प्रकाशक | सुवोध पॉकेट वुक्स
दरियागज, दिल्ली-६

सस्करण | प्रथम
अप्रैल, १९६९

मुद्रक | अनिल कम्पोजिग एजेन्सी
द्वारा बदलिया प्रिंटिग प्रेस,
नई सडक, दिल्ली-६

HAM SUKHI KAISE RAHEN .
Dr Lakshmı Narayan Sharma

मूल्य दो रुपये

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक न तो स्वास्थ्य पर है न सैक्स पर, किन्तु फिर भी इसका विषय स्वास्थ्य और शरीर से अलग नही है। यह जीवन को लेकर लिखी गई है। शरीर का जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। शरीर के बिना जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती। शरीर में कोई रोग न होते हुए भी व्यक्ति दु खी रह सकता है; उसके दु खी रहने के अनेक कारण होते है। मैंने इस पुस्तक में उन्ही कारणो को लिया है, इसीलिए पुस्तक का नाम है—'हम सुखी कैसे रहे ?'

किन्तु यह मात्र उपदेशों की पुस्तक भी नही है और न जीवन की आचार-सहिता है। उपदेश देना मेरी दृष्टि में बडा रूखा काम है। मैं अपने को उपदेश देने का अधिकारी भी नही मानता। उपदेश कोई महापुरुष ही दे सकता है। उन्ही के मुंह से उपदेश शोभा देते हैं।

मैंने तो इस पुस्तक मे अपने पाठको के साथ बातचीत की है। यह बातचीत जीवन के विभिन्न पहलुओ और मुद्दो पर है। जीवन को जैसा मैंने समझा, जैसा देखा, जैसा अनुभव किया—वही सब पाठको से कह दिया है।

पुस्तक के अध्यायो को मैंने ज्यादा सँजोया-सँवारा भी नही है, क्योकि यह बातचीत ही तो है ; जैसे चार मित्र या स्वजन बैठकर बातें करने लगते हैं तो उसमे किसी विशेष क्रम का खयाल नही रखा जाता।

बातचीत के दर्म्यान मेरी आदत किस्से सुनाने और उपमाएँ देने की है। सो यहाँ भी मैंने खूब किस्से कहे हैं, जिससे सारा मज़मून बड़ा दिलचस्प बन गया है ; दूसरे शब्दो मे मैं इसे जीवन का उपन्यास कहूँ तो गलत न होगा, क्योंकि पाठको को निश्चय ही इसके अध्ययन मे उपन्यास का-सा लुत्फ आएगा, साथ ही वे पुस्तक से बहुत-कुछ पाएँगे।

विनीत

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

स्वास्थ्य विहार,
सीलमपुर (ओल्ड)
दिल्ली-३१

विषय-अनुक्रम

जीवन का स्वाद कैसा !!

परलोक मे एक बार तीन महापुरुष इकट्ठे हुए। जीवन के सम्बन्ध मे चर्चा चल पडी ; प्रश्न उठा—"जीवन का स्वाद कैसा रहा ?"

एक ने कहा—"बडा तीखा और कडवा। सारा जीवन दु खो की एक गठरी है।"

दूसरे ने कहा—"नही , कडवाहट के साथ जीवन मे मिठास भी थी। सुख और दुख की मिली-जुली एक चाशनी है जीवन।"

तीसरे ने कहा—"नही ; जीवन तो काफी मीठा था। मुझे उसमे कही कडवाहट नही मिली।"

तीन व्यक्ति, तीन मत , निश्चय नही हो सका कि वास्तव मे जीवन का स्वाद और रूप कैसा है ? निर्णय के लिए तीनो ब्रह्मा जी के पास पहुँचे, क्योकि उन्होने जीवन की सृष्टि की है। तीनो महापुरुषो ने अपनी जिज्ञासा ब्रह्मा जी के सामने रखकर पूछा—"आपने जीवन को कैसा बनाया है ?"

ब्रह्मा जी बोले—"मैंने जीवन मे न कोई स्वाद

मिलाया है न रग। तुम जिस रग के चश्मे से उसे देखोगे वह वैसा ही दिखाई देगा ! अपनी भावनाओ और कर्मो की जैसी चाशनी उसमे मिला दोगे, जीवन का स्वाद वैसा ही हो जाएगा। जीवन सयोगवाही है।"

और वास्तव मे ही जीवन एक सफेद चादर के समान है। उसमे रूप और रग हम स्वय भरते हैं। हम स्वय ही उसमे नमक, मिर्च, मसाला या शर्बत मिलाकर उसका स्वाद बनाते हैं और खुद ही उसमे नीम मिलाकर उसे कडवा भी बना डालते है। अपने जीवन के निर्माता हम स्वय हैं। जीवन न तो भाग्य से बनता है और न दैवी प्रकोप उसे अभिशप्त करते हैं, न ईश्वरीय वरदान ही जीवन मे सुख उँडेलते हैं।

○

जीवन के सन्दर्भ मे अनेक महापुरुषो ने प्रेरणादायक साहित्य लिखा है जिससे जीवन के उन्नयन मे भारी सहायता मिलती है, किन्तु इस स्थल पर हम जीवन को लेकर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार करेगे और वह है जीवन का व्यावहारिक पक्ष। इस सिलसिले मे न तो हमे ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की दुहाई देनी है, न अध्यात्मवाद की बारीकियो और गहराइयो का विश्लेषण करना है और न धर्म के स्वरूपो पर वाद-विवाद करना है। हम यहाँ सिर्फ व्यावहारिकता को लेकर पाठको से कुछ हल्की-फुल्की दिलचस्प बातचीत करेगे।

ससार का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन मे सुख और

शान्ति चाहता है और उसकी महत्वाकाक्षाएँ भी होती हैं। लेकिन क्या वह जीवन में अपना अभीप्सित सब-कुछ प्राप्त कर पाता है ?

अनेक लोग नही कर पाते। वे जीवन से असन्तुष्ट रहते हैं ; परेशान रहते हैं।

प्रश्न उठता है—"ऐसा क्यो होता है ?"

क्योकि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक नही होता। अनेक व्यक्ति पूर्वाग्रहो से ग्रस्त रहते हैं, बहुत-से लोग जीवन के बदलते हुए मूल्यो को नही पहचान पाते ; कई बार लोग अपने प्रति और दूसरो के प्रति ईमानदार और निष्पक्ष नही रह पाते, इतना ही नही, कई बार व्यक्ति स्वय अपने को ही नही समझ पाता।

और यही सब भूलें जीवन मे कष्ट पैदा करती हैं, व्यक्ति के मन और शरीर को सालती हैं—और वह जीवन को दुखों की एक गठरी समझने लगता है।

किन्तु जीवन मे आचरण और व्यवहार, विचार और धारणाएँ, भावनाएँ और मान्यताएँ कैसी होनी चाहिए इसकी कोई निश्चित आचार-सहिता नही बनाई जा सकती। सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण सही होना चाहिए। दृष्टिकोण ही तो जीवन को फीका या रगीन बनाता है। हमारा दृष्टिकोण ही जीवन को रूप देता है।

आइए, जीवन के कुछ मुद्दो को दृष्टिकोण की कसौटी पर कसकर देखें।

⊙⊙

दूसरों से अपेक्षा !!

दूसरो से अधिक अपेक्षा रखना, अधिक आशा करना एक गलत दृष्टिकोण है। सासारिक व्यवहार मे वहुत बार हम अपने परिचितो, सम्वन्धियो और मित्रो से वहुत अधिक आशा लगा वैठते हैं। और जव हमे उनसे आशा के मुताबिक सहयोग और सहायता नही प्राप्त होती तो हम निराश तो होते ही हैं, साथ ही उस व्यक्ति के प्रति अनुदार भी हो जाते हैं।

उदाहरण के तौर पर आपको अपने लडके की इम्तहान की फीस जमा करने के लिए रुपयो की जरूरत आ पडी और सयोग ऐसा आ पडा कि महीने का अन्त है। घर के वजट मे पैसे नही हैं। तनखा मिलने मे अभी एक सप्ताह है। समस्या के हल के लिए आपने चारो तरफ़ नज़र दौडाई और सोच लिया कि अमुक मित्र से रुपये ले आएँगे और वेतन मिलने पर उसे वापस कर देंगे। इस प्रकार मित्र के भरोसे समस्या का हल ढूंढकर आप निश्चिन्त हो गए।

लेकिन शाम को जव आप उस मित्र के पास गए तो

रुपए उधार देने मे उसने अपनी मजबूरी जाहिर कर दी। और आप बेहद मायूस हो गए। यह मायूसी आपको क्यो हुई ? इसलिए कि आपने उससे ज़रूरत से ज्यादा आशा की। आपने यह सोचा कि आपका मित्र तो व्यापारी आदमी है उसके पास रुपए की इफरात रहती है, आपको वह रुपए ज़रूर दे ही देगा।

मगर तस्वीर के दूसरे पहलू पर भी ध्यान रखना चाहिए। आपको यह भी सोचना चाहिए था कि यदि वहाँ से आपको रुपए न मिल सके तो···। कही और से भी इन्तज़ाम की बात सोचते। खुद ही घर मे से इन्तज़ाम करने की तरफ बुद्धि दौडाते। अथवा लडके के स्कूल मे जाकर प्रधानाध्यापक से मिलते , उसे अपनी मजबूरी बताते, सम्भवत वे ही आपको कुछ हल सुझा देते। न होता तो पत्नी का कोई छोटा-मोटा ज़ेवर रहन रखकर रुपए जुटाने की बात सोचते। चारो ओर प्रयत्न करने से अवश्य ही समस्या का कोई-न-कोई हल निकलता। सतत प्रयत्नो से कठिन-से-कठिन समस्याएँ हल हो जाती हैं।

मायूसी की हालत आपको गलत तर्क की ओर भी ले जाती है। रुपए न मिलने की दशा मे आप भी आम आदमी की तरह यही सोचेगे—कि "लो ! क्या पचास रुपए की बात थी, भले आदमी ने साफ इन्कार कर दिया , हम क्या उसके रुपए रख लेते ? ऐसे ही वक्त पर अपने और परायो की पहचान होती है। अजी, अब ज़माना ही बदल गया कौन किसको देता है ! सब मतलब की दुनिया

है। हमने अमुक समय पर इन हज़रत का फर्ला काम किया था, और उस वक्त वह काम निकाला था। मगर कौन गिनता है इन बातो को ? लिहाज़ नाम की तो चीज़ ही दुनिया से उठती जा रही है।" कहना न होगा कि इस प्रकार के तर्क और विचार आपके मित्र को आपकी दृष्टि मे गिरा देने वाले होगे।

मगर आपका पता नही कि आपके उस मित्र को किन मजबूरियो के कारण आपको इन्कार करना पडा। और इन्कार करते हुए उसे अपनी मजबूरी पर काफी दुख भी हुआ। मजबूरी आखिर मजबूरी ही होती है। आपका मित्र व्यापारी व्यक्ति ज़रूर है लेकिन आपको मालूम नही कि परसो ही वह अपने नौकरो को तनखा बाँट चुका है। जिन ग्राहको और पार्टियो से उसके पास रुपया आने वाला था, उसके आने मे काफी देर हो गई। इधर उसे दूसरे लोगों को रुपया भुगतान करना पडा। संयोग था कि वे आपको रुपए नही दे सके। वर्ना कई दूसरे मौको पर उसने आपको कई तरह का सहयोग दिया है। लेकिन जब निगाहो पर किसी की तरफ से मायूसी का चश्मा चढ जाता है तो फिर सारा नज़रिया ही बदल जाता है। आपका मन गिन-गिनकर उसके दोष ढूंढने लगता है। उसके गुण और अच्छाइयाँ नज़रअन्दाज हो जाती हैं। और यह एक गलत दृष्टिकोण होता है।

यह सब कहने से हमारा आशय यह नही है कि कोई व्यक्ति समाज मे रहते हुए अपने परिजनो से सहयोग

और सहायता की अपेक्षा ही न करे। वस्तुत. समाज में रहते हुए इस तरह के सहयोग और सहायता लेनी ही पडती है। लेकिन सवाल सिर्फ दृष्टिकोण का है। ऐसे मौको पर हमें अपना दृष्टिकोण सही और निष्पक्ष रखना चाहिए। यदि किसी मित्र अथवा सम्बन्धी से अपेक्षित सहयोग नही प्राप्त होता है, तब हमे उदारतापूर्वक यही समझना चाहिए कि उसकी भी कोई मजबूरी रही होगी। अन्यथा वह हमारा काम अवश्य कर देता। दूसरे मौको पर भी तो वह हमारा काम निकालता रहा है। इस तरह का दृष्टिकोण रखने पर न तो आप खुद ज्यादा मायूस होगे और न ही दूसरे व्यक्ति के प्रति कोई गलत धारणा बनाएँगे। कहना न होगा कि गलत दृष्टिकोण से सौहार्द मे अन्तर आ जाता है, खटाई पड जाती है। किन्तु सही दृष्टिकोण सौहार्द और सद्भावना की रक्षा करता है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के दृष्टिकोणो और परिस्थितियो मे भी काफी भिन्नता होती है। इसके लिए एक दृष्टान्त सुनिए :—

"मेरे एक मित्र एक बार मुझसे सौ रुपए ले गए। हम लोगो मे इस तरह का लेना-देना चलता रहता था। रुपए देते समय मैंने उनसे कह दिया था कि मुझे दो सप्ताह बाद इन रुपयो की आवश्यकता होगी तब तक लौटाने का प्रबन्ध कर लेना। उन्होने हामी भर ली। लेकिन जब पन्द्रह दिन बाद रुपए वापस करने का समय

आया तो उनके सामने एक नई कठिनाई पैदा हो गई। उन्होने मुझसे कहा—"रुपयों का प्रबन्ध तो मेरे पास हो गया है, लेकिन मैं अभी तुम्हे दो-चार दिन बाद रुपए वापस कर सकूंगा क्योकि मुझे आज ही सौ रुपए मजदूरो को देने है। यदि मैं ये रुपए उन्हे न देकर तुम्हे दे देता हूँ तो वे लोग गरीब आदमी हैं कष्ट पाएँगे, साथ ही ची-चौ करेंगे ; छोटे आदमियों से मैं इस तरह की बाते सुनना अच्छा नही समझता। इसलिए मैं तुम्हे रुपए न न देकर मजदूरो को दूँगा। तुम तो दो-चार दिन की देर बर्दाश्त कर भी लोगे और अगर नाराज भी होओगे तो कोई बात नही, तुम्हारी नाराज़ी मैं मजदूरो की नाराजी से अच्छी समझूंगा। वस्तुत तुम्हारी नाराज़ी झेलने मे मुझे कोई कष्ट न होगा।"

रुपए न मिलने से मुझे निराशा अवश्य हुई ; काम चलाने मे भी कठिनाई हुई, लेकिन मुझे अपने मित्र की दलील ज़रूर ठीक मालूम पडी क्योंकि मित्रता के नाते मैं रुपए न मिलने की दिक्कत का निर्वाह कर सकता था। किन्तु मज़दूर को क्या पडी ! वह क्यो बात को निभाएगा? वह तो चार जगह फजीता भी करेगा, और कष्ट पाएगा सो अलग। लेकिन मैं अगर यह सोचता—'लो साहब ! हमने तो वक्त पर उनका काम चलाया और उन्होने हमारी ज़रूरत का खयाल नही किया। यदि मज़दूरो के पैसे देने थे तो पहले से उनका इन्तज़ाम करके रखते। आखिर हरेक आदमी अपने पेट का मज़दूर है। हम ही

कौन-से बडे रईस हैं, हमारे पीछे भी पूरी गृहस्थी का खर्च है। रुपए का काम तो रुपए से ही चलता है, बातो से नही ” तो निश्चय ही यह दृष्टिकोण गलत होता। रुपए तो उन्होने एक सप्ताह बाद भिजवा दिए, किन्तु सवाल मौके पर बात साधने का था। वस्तुत मन मे व्यक्ति थोडी गुंजाइश रखकर परिस्थितियो को समझते हुए थोडे उदार दृष्टिकोण से काम ले तो वह निराशा और मानसिक क्लेश से बच जाता है और वह कठिनाइयो का भार बहुत हल्का महसूस करता है।

यहाँ जो कुछ हम कह रहे है वह बात सिर्फ रुपए-पैसे के लेन-देन तक ही सीमित नही है, अपितु दूसरे क्षेत्रो मे भी समान रूप से लागू होती है। जैसे आप अपने लडके को नौकरी दिलवाना चाहते है। आपके कोई एक सम्बन्धी कही किसी ऊँचे पद पर काम करते है और उनके पास यह अधिकार है कि वह किसी को भी अपने विभाग में नौकरी दे सके। लेकिन आपके कहने के बावजूद आपके लडके को उनके विभाग मे नौकरी नही मिलती तो आपका रुख उनकी ओर से बिगडना नही चाहिए। बहुत-से ऐसे कारण हो सकते है जिनकी वजह से वे आपका काम करने मे अपने को असमर्थ पाते हों।

उदाहरण के तौर पर आपके लडके ने तीसरी श्रेणी मे गिरे हुए नम्बरो से बी० ए० पास किया है। अब यदि वे प्रथम या द्वितीय श्रेणी मे पास दूसरे उम्मीदवारो को न लेकर आपके लडके को चुनते है तो स्पष्ट है कि उन पर

पक्षपात का आरोप आता है। [कोई भी बडा अफसर अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए पक्षपात के आरोप से बचना चाहेगा।] ऐसी हालत में आपको भी उनकी पद-मर्यादा का ध्यान रखना उचित है। उस समय ऐसी टीका-टिप्पणी नही करनी चाहिए—'अजी साहव ! ऊँची कुर्सी पर बैठकर लोगो की आँखे बदल जाती हैं। करना चाहते तो उनके तो बाएँ हाथ का खेल था। आखिर वे और लोगो की भी तो भर्ती कर रहे हैं। हमारे लडके को भी ले लेते तो क्या बिगड़ जाता ! अजी, बात यह है कि वक्त पर गैर काम आ सकते हैं, अपने काम नही आते। लडका तो आज नही कल कही-न-कही लग ही जाएगा। जिसने पैदा किया है वह खाने को भी देगा ; मगर बात देखी जाती है …।"

आम आदमियो का ऐसे मौके पर यही रुख रहता है, और यह रुख सकुचित दृष्टिकोण का द्योतक है , अर्थात् उन्होने यदि आपका लड़का लगा लिया होता तव तो वे वडे आदमी थे, और वे आपकी स्वार्थ-सिद्धि न कर सके तो आपकी दृष्टि मे उनका व्यक्तित्व ही गिर गया। वात वही दृष्टिकोण की है ; [दृष्टिकोण उदार रखिये ! आपका नज़रिया विशाल होना चाहिए।] आप यह सोचिये कि·· न मालूम उनके सामने क्या मजबूरी आ गई है जो वे आपके लल्लू को नौकरी मे न ले सके वर्ना वे इस काम को ज़रूर करते। और वास्तव मे भी उनके समक्ष कई तरह की मजबूरियाँ हो सकती हैं, जैसेकि जिस समय

आपने उनसे लल्लू की नौकरी के लिए कहा उस समय कोई स्थान खाली न हो। अथवा उनके दफ्तर मे ऊपर से छँटनी करने का हुक्म आ गया हो, या और किसी बडे अफसर या मिनिस्टर की सिफारिश किसी व्यक्ति को रखने के लिए पहुँच रही हो। इसके अलावा यह भी हो सकता है कि वे स्वय ही एक आदर्शवादी व्यक्ति हो, भाई-भतीजावाद को नापसन्द करते हो, आदि।

इसी तरह और भी अनेक छोटे-मोटे काम और बातें हो सकती है, जो आपकी आशा के अनुरूप आपके परिजनो से हल न हो सके। तब आपको न तो निराश होना चाहिए और न उनके प्रति अपने मन मे मैल ही लाना चाहिए क्योकि निराश होने से स्वय आपको कष्ट होगा, दूसरो के प्रति मन मैला करने से जीवन मे ही मैलापन आने लगता है और यही छोटी-छोटी बाते जीवन मे असन्तोष भरती हैं, जीवन को देखने वाले चश्मे को दूषित करती हैं। फिर हम जीवन की एक गलत परिभाषा बनाने लगते हैं—'जीवन दु खो की एक गठरी है'।

प्राय एक और नारा समाज मे बडी बुलन्दी के साथ लगाया जाता है—'अपने सगे-सम्बन्धी कभी काम नही आते, गैरो से फिर भी काम निकल आता है।' यदि निष्पक्ष भाव से विश्लेषण किया जाए तो यह नारा गलत और बेमानी है। ऐसी धारणा बना लेने वाले लोग भी वही मौलिक भूल करते हैं; अर्थात् वे अपने सगे-सम्बन्धियो से जरूरत-से-ज्यादा आशा और अपेक्षा करते हैं,

उनकी परिस्थितियो और मजबूरियो को ध्यान मे नही रखते। दूसरी ओर गैरो से मिलने वाला छोटा-सा सहयोग भी उन्हे बहुत बड़ा दिखाई देता है क्योकि अपनो से उनका मन ऊबा हुआ होता है।

कई बार जब सम्मिलित परिवार अलग-अलग हो जाते है तो परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल जाती है। हरेक को पहले अपने परिवार के स्वार्थ और हितो की ओर देखना होता है। उनके उत्तरदायित्व बढ जाते हैं, अर्थ-व्यवस्था बदल जाती है। ऐसी हालत मे किसी को यह दोष देना युक्ति-सगत नही होता कि 'चाचा जी या भाई साहब की आँखे अब बदल गई हैं।' वस्तुत हमे तब सम्मिलित परिवार की स्थिति से उनके व्यवहार की तुलना नही करनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियो मे ही उनके व्यवहार के मूल्य को आँकना चाहिए।

प्राय ऐसा देखने मे आता है कि सगे-सम्बन्धियो मे बहुत वैर बढ जाता है। यहाँ तक कि फौजदारी और मुकद्दमे-बाज़ी की नौबत आ जाती है। और फिर जब जन और धन की हानि होकर दोनो के जोश ठण्डे पड लेते है तो दोनो को अक्ल आती है। वे फिर घुलते-मिलते हैं। मरने-जीने और हारी-बीमारी मे फिर एक-दूसरे के काम आते है। काश कि उन्होने पहले ही इस नारे को न अपनाया होता कि 'सगे-सम्बन्धी कभी अपने नही होते।' सच तो यह है कि अपने-अपने ही होते हैं, बशर्ते कि हमारा खुद का दृष्टिकोण भी उनकी ओर से अपनेपन का हो। ⊙⊙

ज़माना ख़राब है (?)

बाहर से एक मित्र आ रहे थे। उन्हे लेने मैं स्टेश
पर गया। मित्र महोदय को स्कूटर या टैक्सी की अपेक्ष
ताँगे की सवारी ज्यादा पसन्द थी इसलिए एक पूरा ताँ
कर लिया। सामान ताँगे मे लादकर हम दोनो उसमे ब
गए। ताँगे वाले ने मालिक का नाम लेकर घोडे को टि
कारी दी, घोडा ताँगे को लेकर दिल्ली की चमचमा
कोलतार की सडक पर दौडने लगा। घर पहुँचने तक ह
लगभग तीन मील का फासला तै करना था। हम ल
बातचीत करने लगे।

मित्र बोले—"भाई, क्या बताएँ जीना दूभर लग र
है। महँगाई आसमान को छू रही है। पैसे लिये फि
जाओ मगर जरूरत की चीजे नही मिलती। रोज़गार न
रहा; लोगो को नौकरी नही मिलती! कोई करे तो क
करे! और छोटे आदमी की तो और भी मुश्किल है
ज़माना बडा खराब आ गया है।"

इधर ताँगे वाला फिल्म का कोई गीत गुनगुनाता हुआ
मस्त होकर ताँगा हाँक रहा था। हमारे मित्र महो

स्वभाव से वाचाल और खुशमिज़ाज थे। उन्होने ताँगे-वाले को भी वातचीत मे शामिल कर लिया और पूछने लगे – "कहो म्याँ, कैसी गुज़र रही है ? शाम तक कितना कमा लेते हो ?"

हम लोग सोच रहे थे वह भी अपनी मजवूरियाँ गिन-गिनकर वताएगा। परेशानियो का रोना रोएगा और कहेगा कि वावू जी ! कुछ मत पूछिये, जो दम गुज़र जाय वह ग़नीमत है।

लेकिन वह बोला—"वावू जी ! मालिक का शुक्र है। पन्द्रह-सोलह रोज कमा लेता हूँ। पाँच-छ रुपए रोज घोडे को खिला देता हूँ। वाकी मे आराम से वच्चो की परवरिश हो जाती है। मालिक ने मौज दे रखी है।"

मित्र महोदय को इस उत्तर से काफी आश्चर्य हुआ। वह ताँगे वाले से कहने लगे—"अगर ऐसा है तो वाकई तुम वडे नसीव वाले हो। वर्ना आज तो हर आदमी जमाने की गर्दिश का शिकार है।"

वह कहने लगा—"वावू जी ! गुस्ताखी माफ हो इन्सान तो हमेशा से ज़माने को रोता आया है। उसने ज़माने को अच्छा कव वनाया है ? इन्सान नाशुक्रा होता है वावू जी ! वह खुदा का भी शुक्रगुजार नही है।"

कितना वडा एक तथ्य उस अपढ ताँगे वाले ने कह डाला कि हम दोनो ही उसकी दलील सुनकर स्तम्भित रह गये। सचमुच ही इन्सान हमेशा जमाने से असन्तुष्ट रहा है। जव हम वच्चे थे तो अपने वुज़ुर्गों के

मुंह से सुनते थे कि 'बडा खराब जमाना आ गया है।' और अब हम ज़माने को ख़राब बताते हैं। और शायद हमारे बच्चे भी बडे होकर अपने ज़माने को ख़राब बताएंगे।

कदाचित् यह मनुष्य का स्वभाव बन गया है कि वह बीते हुए युग को बड़ा अच्छा समझता है, उसकी याद करता है, वर्तमान से असन्तुष्ट रहता है, और भविष्य के बारे मे सदिग्ध रहता है।

वास्तव मे ज़माने को ख़राब बताने की भावना के पीछे जीवन के प्रति हमारा असन्तोष छिपा होता है। 'ज़माना ख़राब' कहकर हम अपना 'असन्तोष' व्यक्त करते हैं। और चूंकि समाज मे अधिकाश व्यक्तियो द्वारा यह नारा लगाया जाता है, इसलिए यह कहा जाएगा कि अधिकाश लोग अपने जीवन से असन्तुष्ट रहते हैं। असन्तोष दरअसल असफलता से पैदा होता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि परोक्ष या प्रत्यक्षरूप से सौ मे से निन्यानवे व्यक्ति अपने को असफल समझकर जीवन मे असन्तोप अनुभव करते रहते है। वस्तुत. सफलता का कोई एक मापदण्ड नही है। कोई ऐसा स्तर या स्थान नही है जहाँ पहुँचकर व्यक्ति अपने को पूर्ण सफल समझ सके। अपनी असफलता या सफलता अथवा जीवन मे सुख या दुख नापने मे हमारी दृष्टि आपेक्षिक होती है। हम प्राय. दूसरो के जीवन को देखकर अपने को सुखी या दुखी समझते है। यह कदाचित् मानव-स्वभाव बन गया

है कि वह अपने से ऊपर के व्यक्तियो को देखकर अपने को दुखी समझने लगता है।

एक सामान्य व्यक्ति का उदाहरण लीजिये जो बीवी-बच्चो सहित बिना किसी परेशानी के मजे मे गुजर-बसर कर लेता है। उसके बच्चे स्कूल भी जाते है। रात को उन्हे दूध भी पीने को मिल जाता है। मुहल्ले मे उनके परिवार का मान भी है। तीज-त्योहार भी उनके यहाँ बडी खुशी और सम्पन्नता से मना लिए जाते हैं; और भी छोटे-मोटे सुख उन्हे प्राप्त हैं। लेकिन यदि कोई उस व्यक्ति से पूछे कि—"कहो, भाई! कैसी गुजर रही है?" तो वह अपने दु खो और अभावो की एक लम्बी सूची सुना देगा। उसका दृष्टिकोण यह होता है कि पडोस के लाला धनदास के पास दो कारे है, लेकिन मेरे पास मोटर साइकिल भी नही है। लोगो के बैंको मे हजारो और लाखो रुपए जमा है; मेरे पास सौ रुपए भी नही बच पाते। आजकल लोग टैरीलीन के कमीज और पैण्ट पहनते हैं परन्तु मेरे और मेरे बच्चो के पास गिने-चुने सूती कपडे है। घर का मकान नही, नौकर नही। पत्नी के पास सिवाय मामूली गहनो के बढिया ज़ेवर भी नही हैं। रोज कुआँ खोदता हूँ तो रोज पानी मिल जाता है। यह भी कोई जीवन है! दौड-धूप और संघर्ष मे रात-दिन चैन नही मिलता। न मालूम कभी सुख के दिन आएँगे भी या नही!!

लेकिन वह यह नही देखता कि उसका दूसरा पडौसी

और सोना तक भी कठिन बना हुआ है। ऐसी हालत मे इन बाबू जी को चाहिए कि ईश्वर को धन्यवाद दे कि उनकी कोई लड़की पागल नही है।

और इसी तरह यदि वे चारों ओर नज़र दौडाएँ तो देखेंगे कि वे हज़ारो लोगों की अपेक्षा सुखी है, सम्पन्न हैं। अपनी स्थिति पर उन्हे सन्तोष करना चाहिए। लेकिन सन्तोष करने से हमारा यह तात्पर्य नही है कि कोई व्यक्ति हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जाए, आगे बढने, उन्नति करने तथा अधिक धनोपार्जन की चेष्टा ही न करे। वस्तुत. ऊँचा उठने की चेष्टा तो किसी भी व्यक्ति को बेचैनी के साथ करनी चाहिए। यदि कोई अपने प्रयत्नो और चेष्टाओ की गति को रोक देगा, तब तो जीवन ही ठप्प हो जाएगा; उसमे गतिहीनता आ जाएगी। लेकिन इन सब चेष्टाओं के बावजूद उसे जीवन मे जो सुख-सुविधाएँ और स्वतन्त्रता प्राप्त है, उनका आनन्द भी लेना चाहिए, उपभोग भी करना चाहिए। 'अभावो के लिए झीकते रहना और प्राप्त सुख की कद्र न करना' यह जीवन मे एक गलत दृष्टिकोण होता है जिसे मनुष्य स्वय बनाता है और फिर उससे दु खी रहता है।

हम एक ऐसे बेपढे-लिखे व्यक्ति को जानते है जो मुश्किल से अपने दस्तखत कर पाता है। उसने न तो कोई जीवन-दर्शन पढ़ा था और न किसी प्रेरणादायक साहित्य का अध्ययन किया था। लेकिन हमने उस व्यक्ति को कभी गमगीन नही देखा। हमेशा खुशमिज़ाजी से बातचीत करना,

खुद हंसना और दूसरों को हँसाना—उसके स्वभाव का एक अग था। वह और उसका परिवार प्राय अभावग्रस्त रहता था। पड़ौस मे होने के कारण बहुत-सी बाते प्रकाश मे आती रहती थी। एक दिन पता चला कि उस परिवार मे सब लोग दो दिन से सिर्फ नमक से रोटी खा रहे हैं। लेकिन उस व्यक्ति को मित्रो के साथ हँसी-खुशी के 'मूड' मे ताश खेलते पाया। परन्तु ताश खेलने का अर्थ यह नही था कि वह व्यक्ति अकर्मण्य रहा हो। धनोपार्जन के लिए वह काफी दौड-धूप और परिश्रम करता था। वस्तुत विषम परिस्थितियाँ प्रत्येक व्यक्ति के सामने आती है। उन परिस्थितियो को लेकर झीकना या गमगीन नही हो जाना चाहिए वरन् चिन्ताग्रस्त न होकर चिन्तन करना चाहिए। चिन्तन का अर्थ है—परिस्थितियो को सुधारने का उपाय सोचना, अभावो को दूर करने मे प्रयत्नशील होना। चिन्ता से मन मे क्लेश और जीवन मे उदासीनता आती है, जबकि चिन्तन समस्याओ को सुलझाने मे भारी सहायता करता है। वह अपढ व्यक्ति जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है, निश्चय ही जीवन के इस तथ्य को समझता था। वह जीवन के अन्तराल को सीचना जानता था।

[अभावो को दूर करने के प्रयत्नो के साथ-ही-साथ जो सुख-सुविधाएँ व्यक्ति प्राप्त हो, उनका पूरा आनन्दोपभोग भी करना चाहिए।] यदि आपको पैसे की तगी रहती है किन्तु आपका लडका कुशाग्र बुद्धि है और परीक्षा मे

हमेशा प्रथम श्रेणी मे पास होता है। तो इस देन पर गर्व कीजिए। यदि आपके पास मकान नही है और आपकी पत्नी सुशील और सुन्दर है तो अपने को आप सौभाग्यशाली मानिए। मकान हजारो लोगो के पास नही है। यदि आपके कुछ अच्छे मित्र है तो इसे भी आप वरदान समझिए। आप पूर्ण स्वस्थ रहते है, कभी बीमार नही पड़ते तो इस सुख का भी आनन्द-लाभ कीजिए। सच तो यह है कि आपको खोज-खोजकर ऐसे 'पाइण्ट्स' निकालने चाहिए जिनमे आप सुखानुभव करते है। व्यक्ति को कभी यह नही समझना चाहिए कि वह अभागा है, बदनसीब है और सिर्फ दुख भोगने के लिए पैदा हुआ है। जीवन के लिए यह चश्मा गलत होता है। ⊙⊙

ज़माने का सांस्कृतिक पक्ष

पारिवारिक अथवा व्यक्तिगत समस्याओ के अलावा कई प्रकार की धार्मिक और सास्कृतिक ऊहापोह को लेकर भी लोग 'ख़राब ज़माने' से परेशान होने लगते हैं। जन-साधारण मे दृष्टिकोण का यह दोप भी सदा से ही चलता आ रहा है। इस स्थिति का विश्लेपण यह है कि व्यक्ति जीवन के वदलते हुए रूप को स्वीकार नही पाता, बदलते हुए मूल्यो को नही पहचान पाता। इसीलिए वह गुज़रे हुए ज़माने की दुहाई देता है।

ज़माने से असन्तुष्ट रहने वाले लोगो को जीवन और समाज के अनेक पक्षो से शिकायत रहती है। इन शिकायतो को आम तौर पर सुना जा सकता है। जैसे :—

—"अजी साहव, क्या ज़माना आ गया है! अव तो चूडे, चमार, भगी, मुसलमान सब एक हो गए। कुछ धर्म-कर्म ही नही रहा। अब तो होटलो मे ये लोग साथ बैठकर खाना खा जाते हैं; चाय पीते है, कुछ पता ही नही चलता कि कौन जात के है। हमारे ज़माने मे भगी कौए का पर लगाकर निकला करता था और 'हटना महा-

राज ! बचना पण्डित जी !' ऐसी आवाज़ लगाकर चलता था। और चमार बस्ती से बाहर रहते थे। क्या मजाल थी कि कोई मेहतर या चमार कुएँ पर चढ जाए ! अब क्या है ! अब तो सरकार ही मन्दिरो मे घुसा रही है।"

—"अब तो साहब, बेशर्मी की हद हो गई ! औरतें सरे-बाज़ार खुले-मुंह लाली-पाउडर लगाकर बाज़ारो मे घूमती है। वर्ना पहले स्त्रियाँ घर मे भी घूंघट-पल्ले मे रहा करती थी। अब तो लडके-लडकियाँ साथ पढते हैं। औरते दफ्तरो मे काम करती है। क्या ज़माना आ गया है ! और अभी क्या है ? आगे-आगे देखिए क्या होगा। हमारे बुजुर्ग इसीलिए लड़कियो को पढाना अच्छा नही समझते थे। बहुत हुआ लडकी को चिट्ठी-पत्री तक पढ़ा दिया, रामायण पढा दी। अब तो स्कूलो मे भी उन्हे नाविल और किस्से पढाए जाते हैं।

—"आजकल क्या पूछिए, बच्चा-बच्चा फैशनपरस्त होता जा रहा है। हरेक को टैरीलीन का सूट चाहिए। और सिर पर तो कोई अब टोपी ओढता ही नहीं। सभी माँग-पट्टे काढने लगे। वर्ना पहले लोग कितने सादे रहते थे ! दो धोती और दो कुर्तों मे साल पार हो जाता था। अपना पहनावा ही लोगो ने तर्क कर दिया।"

—"क्या हवा चली है कि लोग सिनेमा के पीछे दीवाने रहते हैं। घर मे चाहे खाने को न हो मगर सिनेमा देखने ज़रूर जाएँगे। वर्ना साहब हमे अच्छी तरह याद है—भले घर के लोग सिनेमा अच्छा नही समझते थे।

ग्रौर हमारे बाबा तो मरतात् मर गए मगर उन्होने कभी सिनेमा मे कदम नही रखा। वह कहते थे जिसे ग्रपनी ग्राँखे चौपट करनी हो वह सिनेमा देखे। उन्होने सारी उम्र चश्मा नही लगाया। ग्रौर ग्रब देख लो, ज़रा-ज़रा-से बच्चो की ग्राँखो पर चश्मा चढ जाता है।"

इसी तरह किसी को महँगाई से शिकायत है, किसी को घी-दूध न मिलने का शिकवा है, कोई लडके-बालो के उद्दण्ड होने का गिला करता है तो कोई यही सोच-सोच-कर परेशान हो रहा है कि आजकल लोग पूजा-पाठ, नमाज ग्रौर रोज़े मे विश्वास खोते जा रहे है। लोग ज़ात-बिरादरी छोडकर विवाह-शादी करते हैं—यह बात भी प्राय जमाने की शिकायत मे शामिल रहती है।

खराब ज़माने की यह विचारधारा अनेक ग्रशो में जीवन के ग्राकर्षण को कम कर देती है। व्यक्ति जीवन मे ग्रसन्तोप ग्रनुभव करता रहता है क्योकि जीवन के बदलते हुए क्रम ग्रौर मूल्यो के साथ वह समझौता नही कर पाता।

लेकिन इस स्थिति का वैज्ञानिक विश्लेपरण यह है कि ज़माना कभी एक-सा नही रहा है। वह हमेशा बदलता है; बदल रहा है ग्रौर बदलता रहेगा। जैसे-जैसे मनुष्य वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त करता जा रहा है, वह ग्रपने जीवन की सुख-सुविधाओ को बढाता चला जा रहा है। वह जीवन मे पूर्णता लाने की ग्रोर ग्रग्रसर है। नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियो के प्रकाश मे हमारी पुरानी रूढि-

ग्रस्त मान्यताएँ ढह जाती है। पुराने जमे अन्धविश्वासों की जडे हिल जाती हैं और तब हम तिलमिला जाते हैं।

इस सम्बन्ध मे एक तथ्य यह भी है कि जमाने से व्यक्ति को चाहे जितनी भी शिकायत रहे, परन्तु जीवन-क्रम मे आने वाले इन परिवर्तनो को अन्ततोगत्वा हमे स्वीकार करना ही पडता है। इतिहास यह बताता है कि प्रत्येक नई बात का प्रारम्भ मे विरोध होता है। लेकिन फिर धीरे-धीरे वही हमारे जीवन का एक अग बन जाती है। बिजली की रोशनी, पानी की बरफ, रेलगाडी, अग्रेज़ी दवाइयाँ, कोट-पतलून का पहनावा, मोटर, साइकिल, हवाई जहाज, वनस्पति घी आदि अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका शुरू-शुरू मे बडा विरोध हुआ, लेकिन अब यही चीज़े हमारे जीवन का अनिवार्य अग हो गई है। तो जब हम अन्ततोगत्वा प्रत्येक नवीनता को स्वीकार करते चले आ रहे हैं तो फिर इनका विरोध अथवा खराब ज़माने की शिकायत क्यो ??

अतीत काल के प्रति हमारा मोह इस कारण से भी अधिक होता है कि उस समय के इतिहास का हमने उज्ज्वल पक्ष ही सुना या पढा होता है। जैसे—"अमुक राजा के राज मे चोरी ही नही होती थी, लोग खुले किवाड सोते थे।"—"पुराने लोग बड़े सयम और नियम से रहते थे।"—"फलाने समय मे ऐसा होता था और ढिमके युग मे यह खूबियाँ थी।" वस्तुत ये सब एकपक्षीय बाते है। उज्ज्वल पक्ष को उभारकर दिखाया गया है। अन्यथा

चोर, व्यभिचारी, कुलटाएँ, डाकू, छली और कपटी लोग हरेक युग मे हुए हैं, आज भी हैं और आगे भी रहेगे। क्योकि, वास्तविकता यह है कि समाज, आचरण की जो मान्यताएँ स्थापित करता है। जो आदर्श बनाता है, उनमे काफी ऊँची उडान रहती है। सामान्य लोग काफी प्रयत्न के बावजूद उन तक बहुत कम पहुँच पाते हैं। ऐसी स्थिति मे स्वभावतया ही लोग ऊँचे आदर्शों की कसौटी पर पूरी तरह खरे कैसे उतरेगे (!)

[सस्कृति कोई स्थायी वस्तु नही है। यह हर युग मे बदलती आई है, आज भी बदल रही है और आगे भी बदलेगी।] मानव ज्यो-ज्यो वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त करता जा रहा है, जैसे-जैसे जीवन के लिए सुख-सुविधाएँ जुटाता जा रहा है, उसीके अनुसार हमारे खानपान, रहन-सहन, भाषा, विचार, पहनावा, शिक्षा-पद्धति, तथा जीवन के दूसरे क्षेत्रो मे परिवर्तन आता चला जा रहा है। वस्तुत आज मानव बडी तेजी से आगे बढ रहा है, वह अन्तरिक्ष और दूसरे ग्रहो मे पहुँचने के लिए कटिबद्ध है। इसलिए जीवन-क्रम मे भी तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं।

और ये परिवर्तन शाश्वत है, प्राकृतिक है। यही परिवर्तन जमाने को बदलते है। बदलते जमाने को 'खराब जमाना कहना' कोई सही दृष्टिकोण नही है। जो यथार्थ है वह स्वीकार्य होना चाहिए। ⊙⊙

शब्द-शक्ति

दूसरों से बातचीत करना लोक-व्यवहार का एक मुख्य अग है। मीठी और सलीके की बातचीत काम बनाती है। बिगड़े काम भी वाक्-चातुर्य से संभल जाते हैं। लेकिन बेढगी बातचीत से समस्याएँ उलझ जाती है और कई बार बनते काम बिगड जाते है। बातचीत करना वास्तव मे एक कला है। ऐसे उदाहरणो की कमी नही है जहाँ युक्ति-युक्त बातो से भारी मसले हल हो गए और बेतुकी बातो से वैमनस्य बढ गए। यह कवि की शब्द-शक्ति ही थी कि उसने नादिर शाह से कत्ले-आम रुकवा दिया, और द्रौपदी के गर्वपूर्ण ताने पर महाभारत खड़ा हो गया।

किन्तु, यहाँ आप बड़ी-बडी बातो को छोडिए। दैनिक जीवन की बातचीत ही लीजिये। हमे प्रतिदिन घर और बाहर के लोगो से न मालूम कितनी बातचीत करनी पडती है। बहुत बार जब कोई हमारी बात नही मानता; बात का मखौल उड़ाता है; हमारी बात का आदर नही करता, या कुछ कहने पर तिरस्कार कर देता है, छोटे

लोग आज्ञा का उल्लघन कर देते हैं , या पडौसी हमारी बातचीत से रुष्ट हो जाता है , अथवा दुकान पर ग्राहक बातचीत से बिदककर चला जाता है ; या बात-ही-बात मे पत्नी से झगडा हो जाता है तो निश्चय ही मन में क्लेश होता है और चाहे अल्प समय के ही लिए हो, हृदय मे एक उदासी और विरक्ति आ जाती है।

वस्तुत: बातचीत के पीछे बहुत-सारे कारण होते हैं ; बातचीत का एक माहौल होता है। भिन्न-भिन्न लोगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। अलग-अलग लोगो से अलग-अलग मुद्दो पर ही बातचीत होती है। यहाँ हम बातो के उतने विस्तार मे नही जाएँगे। इस छोटी-सी पुस्तक मे उतनी गहराई मे जाना सम्भव भी नही है। हम यहाँ बातचीत के ढग और शब्दो के चुनाव पर ही आपसे थोडी बातचीत करेंगे। दरअसल बातचीत के सिलसिले मे किन्ही निश्चित नियमो का उल्लेख नही किया जा सकता। सोचना और देखना सिर्फ यह है कि बातचीत किस ढग से करनी चाहिए। शब्दो और भावो का चुनाव कैसा होना चाहिये (!) ताकि बात प्रभावोत्पादक, दिलचस्प और वज़नदार हो।

इस सिलसिले मे यह बात हमेशा ध्यान मे रखनी चाहिये कि आपकी बातचीत ऊब पैदा करने वाली तथा अनावश्यक रूप से लम्बी-चौडी नही होनी चाहिये। थोडे शब्दो मे अपना अभिप्राय प्रकट कर देने से बात प्रभावोत्पादक होती है। बहुत-से लोगो की आदत बन

जाती है कि वे व्यर्थ ही बात को बहुत लम्बी-चौडी करके कहते हैं। यदि वह अपनी लडकी के लिए लडका देखने जयपुर गये थे और आपने उनसे पूछ लिया—"कहो साहब, जयपुर वाला लडका कैसा रहा, पसन्द आया या नही ?"

तो वे सीधा और सक्षिप्त उत्तर नही देगे। बडी दूर से बात का सिरा प्रारम्भ करेंगे—कहेगे—"अजी क्या बताऊँ, जिस दिन मैं जयपुर जाने वाला था, उस दिन अचानक छोटे लडके की तबीयत बहुत खराब हो गई और उसे सिवाय डाक्टर चड्ढा के दूसरे की दवा माफिक नही आती। उस दिन डाक्टर चढ्ढा मिले नही। हारकर डाक्टर गोविन्द सहाय को दिखाया। बस आप यो देखो कि ज्यो-ज्यो उनकी दवा दी, मर्ज़ दूना होता चला गया। आखिर उनका इलाज बन्द कर दिया। दूसरे दिन जब चड्ढा साहब आए, उन्होने इञ्जैक्शन लगाया, दवा बदली तब कही जाकर तीन दिन मे तबीयत सुधरी। नही तो मैं काफी पहले ही जयपुर चला जाता। अब सुनिये सफर की बात, गाडी मे इस कदर भीड थी कि तिल रखने के लिए जगह नही। आदमी पर आदमी चढा हुआ था। जैसे-तैसे एक डिब्बे मे चढे। वहाँ भी लोग ठसाठस भरे थे। इधर-उधर नज़र दौडाई कि कही बैठने की ज़रा-सी जगह मिल जाए तो देखा कि दो पजाबी पूरी बर्थ घेरे पडे है, सब लोग खडे हैं और वे पडे आराम से लेटे हुए थे। किसी को बैठने ही नही देते थे। उनसे बड़ा झगड़ा

हुआ। बस, यह समझिये कि सारी रात बडी परेशानी में कटी। पलक झपकने का तो काम ही क्या था! राम-राम करके सुबह जयपुर पहुँचे। रात की थकान उतर जाएगी इसलिये सोचा, स्टेशन की स्टाल पर चाय पी ली जाय। मगर साहब! यहाँ चाय क्या मिलती है (!) कोरा गरम पानी था, और नमकीन की तो कुछ पूछिये ही मत, तेल की बदबू आ रही थी। बात यह है कि जो खाना-पीना दिल्ली-मेरठ के इलाको मे मिलता है, वैसा सारे हिन्दुस्तान मे नही मिलता। मैं भी बहुत-वहुत दूर तक घूम चुका हूँ, सब जगह का खाना-पीना देखा है, मगर हमारे यहाँ के खाने को कही का खाना नही पहुँच पाता।

खैर जी, स्टेशन से वाहर आए तो ताँगे वालो ने घेर लिया। ताँगे तो वहाँ के अच्छे है मगर ताँगे वालो की बोली ही समझ मे नही आती। न जाने कैसे अट्ठे-कट्ठे वोलते है। वडी मुश्किल से एक ताँगे वाले को समझाया कि जौहरी बाजार जाना है। मगर क्या वताएँ, जाना-आना सब बेकार ही रहा। हमारी तरफ से कुछ देर हो गई, वह लडका घिर गया। वैसे लडका और घरबार अच्छा था। और साहब, यह तो सजोग की वात होती है। जहाँ की जोडी वलवान् है वही सजोग होगा।"

बात का जवाव सिर्फ इतना था कि उस लडके का रिश्ता किसी दूसरी जगह हो गया है। इस जरा-सी बात को उन्होने बेकार का तूल-तवील देकर इतना बडा बनाया। कहना न होगा कि इस तरह की बेतुकी लम्बी-

चौडी वातचीत से सुनने वाला ऊब जाता है। ऐसे व्यक्तियो को लोग दिमागचाटू और बकवादी समझ लेते है और उनसे बात करते हुए कतराते है। ऐसी हालत मे वह व्यक्ति यह समझने लगता है कि 'लोग मेरी वात ही नही सुनते। मेरी वात को कोई वज़न ही नही देता।' फल यह होता है कि उसे लोगो से शिकायत रहती है और ज़िन्दगी मे एक असन्तोष घुस जाता है।

बातचीत की यह वात हालाँकि एक छोटी-सी वात लगती है, मगर ऐसी ही छोटी-छोटी वाते जीवन का रूप बनाती है, जिन्दगी का डिज़ाइन तैयार करती है।

बातचीत का एक पक्ष और है—'खरी बात कहना'। कई लोग गर्व से यह कहते सुने जाते हैं—'मैं तो खरी और सच्ची बात कहता हूँ, चाहे किसी को बुरी लगे या भली।' सच बोलना अच्छी वात जरूर है, लेकिन कडवा सत्य या बेमतलब की खरी बात बजाय लाभ के हानि-कारक साबित होती है। कडवा सत्य कहना नीति की दृष्टि से गलत है। वस्तुत बात वही बढिया होती है जो प्रिय लगे। सच्ची वात भी प्यार के लहजे मे और मीठे शब्दो की चाशनी चढाकर कही जा सकती है। सत्य तो सत्य ही होता है, वह न प्रिय है न अप्रिय। प्रिय और अप्रिय उसे हम स्वय बनाते है। मगर सत्य के प्रति प्राय: लोगो की ऐसी धारणा बनी हुई है कि वे सत्य को कडवा ही समझते हैं। कदाचित् इसीलिए यह कहावत बन गई कि 'सच्ची बात से लडाई हो जाती है।' अगर आप काने

को 'काना' कहेगे, बदनीयत आदमी को बेईमान कह देगें तो ज़रूर ही लडाई होगी। क्योकि ये सब अप्रिय सत्य है। अप्रिय बात से व्यक्ति अपमानित होता है। बात इस तरह कहनी चाहिये कि 'साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।'

मान लीजिये कि आपनें अपने किसी मित्र से किसी बहुत ज़रूरी काम के लिए कहा। मित्र ने वादा किया कि वह कल शाम को ज़रूर आपके काम के लिए आपके घर आएगा। अगले दिन आप बडी बेचैनी से अपने मित्र की प्रतीक्षा मे रहे, लेकिन मित्र महोदय नही आये और आपका वह ज़रूरी काम न हो सका। ऐसी स्थिति मे यदि आप खीजकर अपने मित्र से भला-बुरा कहेगे, वादा पूरा न करने पर उसे जलील करेंगे तो ज़रूर ही मित्र को वे बातें बुरी लगेगी, भले ही सारा दोष मित्र का ही है आपका कोई कसूर नही। परन्तु इस खरी-खोटी कहने का फल यह भी हो सकता है कि आपकी मित्रता ही टूट जाये अथवा दोनो के दिलो मे रंजिश पैदा हो जाए। स्पष्ट है कि ये बाते आपके लिए सुखकर नही होंगी, जीवन मे एक कड़वाहट और असन्तोष प्रवेश कर जाएँगे।

वस्तुत ऐसे मौको पर थोडे संयम की ज़रूरत होती है। विचारने की बात यह है कि मित्र के न आने से आपका ज़रूरी काम तो रुक ही गया। अब आप उसे खरी-खोटी सुनाएँ तो वह वक्त लौटकर नही आ सकता।

लिए होता है कि उसने अपने मीठे व्यवहार से मर्यादा-पालन पर भी मिश्री की चाशनी चढाई होती है।]

[आम जनता के अधिक सम्पर्क में आने वाले अफसरों को तो विशेषरूप से मिष्टभाषी और नम्र होना चाहिए। ऐसे ही अफसरों को लोग याद करते हैं।]

हमारे एक डाक्टर मित्र हैं जो शायद भारत के प्रधान मन्त्री की तरह व्यस्त रहते है। रात के बारह-बारह बजे तक रोगी उनके दवाखाने से नही टूटते। वे बराबर उन्हे देखते रहते है। उधर सुबह छै बजे से मरीजो को देखने घर से निकल पड़ते हैं। दिन मे उन्हे भोजन करने तक का समय नही मिलता। ऐसे व्यस्त आदमी का मिज़ाज चिडचिडा हो जाये तो कोई ताज्जुब की बात नही है। लेकिन उनमे इतना असाधारण सयम देखने को मिलता है कि कई बार आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। कभी उनके माथे पर शिकन नही आती। वे हरेक रोगी से इतनी मीठी, नम्रतापूर्ण और हमदर्दी से भरी बातचीत करते हैं कि मानो वह उनके घर का ही आदमी हो। उनका कहना है कि मैं रोगियों की जितनी ज्यादा सेवा करता हूँ, मुझे उतना ही अधिक सन्तोष और खुशी होती है। उनका नाम लोगो की ज़बान पर चढ गया है। उनके पास बहुत दूर-दूर से रोगी आते है। साथ ही उन्होंने बहुत अच्छा पैसा भी कमाया है। मीठे व्यवहार का मीठा फल उन्हे प्रत्यक्षरूप से मिल रहा है।

दुकानदारों, वकीलो, एजेण्टो, एव सामाजिक कार्य-

कर्ताओ के लिए तो नम्र व्यवहार और शिष्ट भाषण विशेषरूप से ज़रूरी होता है। यह उनके पेशे मे भारी सहायक सिद्ध होता है।

○

कुछ लोगो की यह आदत होती है कि वे दूसरो की हर बात का विरोध करते है। उनका विरोध अक्सर तर्क-संगत भी नही होता। जैसे आप उनके सामने कहते हैं—

"अमुक डाक्टर बडा होशियार है। कल मैं उनके पास अपने लडके को ले गया था, उसे एक महीने से खांसी ही नही जाती थी। लेकिन उनकी तीन दिन की दवा से ही खाँसी बिल्कुल ठीक हो गई।"

तो वे फौरन कहेगे—"आपके लडके को फायदा हो गया होगा, मगर हमने तो उस डाक्टर के कई 'केस' देखे, कोई अच्छा नही हुआ। और रामचरन तो उसी के इलाज से मर गया।"

आप अगर कहते हैं—कि "आजकल चोरबाज़ारी की तो हद हो गई है। हर चीज पर 'ब्लैक' हो रहा है।"

तो वे कहेगे—'ब्लैक तो होगा ही! लोगो के ख़र्चे पूरे नही पडते, ब्लैक न करे तो और क्या करे! तुम्हारे पास चीनी का कोटा होता तो तुम भी ब्लैक करते, तुम कब मान जाते!"

कोई अगर उनके सामने कहता है—"आज तो सर्दी बहुत ही ज्यादा रही।"

वे उसकी भी फौरन काट करेगे—"तुम्हे लगी होगी

इसलिए अगर आप उसे मीठा उलाहना देते हुए कहे, "मालूम पडता है कल तुम वादा ही भूल गए , या कोई मजबूरी आ पडी थी ? मैंने तुम्हारी काफी इन्तज़ार की।"

यह निश्चय है कि मित्र इस मीठे उलाहने से ज्यादा शर्मिन्दा होगा। आगे वह ऐसे मामलो मे ज्यादा सतर्क रहेगा। इतना ही नही, मिष्ट भाषण से उसके मन मे आपके लिए अधिक गुंजायश हो जायेगी जो दोनो के लिए सुखकर होगी। [वस्तुत यह शब्दो की ही शक्ति होती है जो मित्रो को शत्रु और शत्रु को मित्र बना देती है।]

एक बार एक सज्जन ने एक दुकान से बहुत सारा फर्नीचर खरीदा। उन्हे बाद मे पता चला कि वह दुकान-दार बेईमान किस्म का आदमी है। चीज़ो का जो कुछ मूल्य बताता है, बिल मे उससे अधिक लगाकर भेज देता है। अगर उससे कुछ कहा-सुना जाये तो मानता नही। उन सज्जन के पास जब फर्नीचर का बिल आया, तो उसमे भी कीमते ज्यादा लिखी थी। उन्होने बडी शिष्ट और मीठी भाषा मे उसे एक पत्र लिखा कि "आपके क्लर्क ने भूल मे चीजो के दाम कुछ ज्यादा लगा दिये हैं, कृपया बिल ठीक कराके आप स्वय उसे जाँचकर भेजे।" उनके इस पत्र का उस दुकानदार पर यह प्रभाव पडा कि उसने कीमते ठीक की और क्लर्क की भूल के लिए माफी भी माँगी, जबकि वास्तव मे बिल उसने ही बनवाया था। लेकिन चूंकि शिकायत उसकी प्रतिष्ठा को बचाते हुए की गई थी, इस बात का उस पर प्रभाव पडा।

नम्र, शब्द और शिष्टता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सफलता दिलाती है। बहुत-से लोग जो ऊँचे पदों पर होते हैं, कठोरता बरतने के पक्षपाती हो जाते है। उनका ऐसा विश्वास होता है कि कठोरता से अनुशासन बना रहता है, नीचे के लोग ठीक काम करते है ; त्योरियाँ टेढी रहे और वाणी सख्त रहे तो रौब रहता है। लेकिन ऐसा समझना सभी जगह सही नही होता। अक्सर ऐसे अफसर बदमिजाज़ और बुरे समझ लिए जाते है। लोगो को उनके प्रति प्रेम और सहानुभूति नही होती।

लेकिन ऐसा कहने से हमारा तात्पर्य यह नही है कि अफसर लोग अपनी मर्य्यादा का ध्यान न रखें। सफल शासन के लिए मर्य्यादा की रक्षा ज़रूरी होती है। मेल-जोल अधिक न बढ़ाना, पक्षपात न करना, नियमो की पाबन्दी करना आदि बातें ज़रूरी होती हैं। किन्तु जब इनके साथ कठोर व्यवहार और कडवी जबान मिल जाती है तो सभी कुछ कडवा हो जाता है। मेवे को आप नीम की चाशनी के साथ मिला दीजिये तो उसका स्वाद भी कडवा हो जाता है। दूसरी ओर जब कोई दूसरा अफसर भी इन्ही मर्य्यादाओ का पालन करता है, लेकिन व्यवहार मे नम्र और मिठबोला है, तो उसका मर्य्यादा पालन भी गुण बन जाता हैं। लोग कहते हैं कि अमुक अफसर तो बड़ा ही भला है, बडा शरीफ और मिलनसार है। ईमानदार इतना है कि कोई काम बेकायदे नही करता। किसी का पक्षपात नही करता। ऐसा सिर्फ इस-

लिए होता है कि उसने अपने मीठे व्यवहार से मर्य्यादा-पालन पर भी मिश्री की चाशनी चढाई होती है।]

[आम जनता के अधिक सम्पर्क मे आने वाले अफसरो को तो विशेषरूप से मिष्टभाषी और नम्र होना चाहिए। ऐसे ही अफसरो को लोग याद करते है।]

हमारे एक डाक्टर मित्र हैं जो शायद भारत के प्रधान मन्त्री की तरह व्यस्त रहते है। रात के बारह-बारह बजे तक रोगी उनके दवाखाने से नही टूटते। वे बराबर उन्हे देखते रहते है। उधर सुबह छै बजे से मरीजो को देखने घर से निकल पडते हैं। दिन मे उन्हे भोजन करने तक का समय नही मिलता। ऐसे व्यस्त आदमी का मिज़ाज चिडचिडा हो जाये तो कोई ताज्जुब की बात नही है। लेकिन उनमे इतना असाधारण सयम देखने को मिलता है कि कई बार आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। कभी उनके माथे पर शिकन नही आती। वे हरेक रोगी से इतनी मीठी, नम्रतापूर्ण और हमदर्दी से भरी बातचीत करते हैं कि मानो वह उनके घर का ही आदमी हो। उनका कहना है कि मैं रोगियो की जितनी ज़्यादा सेवा करता हूँ, मुझे उतना ही अधिक सन्तोष और खुशी होती है। उनका नाम लोगो की ज़बान पर चढ गया है। उनके पास बहुत दूर-दूर से रोगी आते है। साथ ही उन्होने बहुत अच्छा पैसा भी कमाया है। मीठे व्यवहार का मीठा फल उन्हे प्रत्यक्षरूप से मिल रहा है।

दुकानदारो, वकीलो, एजेण्टो, एव सामाजिक कार्य-

कर्ताओं के लिए तो नम्र व्यवहार और शिष्ट भाषण विशेषरूप से ज़रूरी होता है। यह उनके पेशे मे भारी सहायक सिद्ध होता है।

○

कुछ लोगो की यह आदत होती है कि वे दूसरो की हर बात का विरोध करते है। उनका विरोध अक्सर तर्क-संगत भी नही होता। जैसे आप उनके सामने कहते हैं—

"अमुक डाक्टर बडा होशियार है। कल मैं उनके पास अपने लडके को ले गया था, उसे एक महीने से खाँसी ही नही जाती थी। लेकिन उनकी तीन दिन की दवा से ही खाँसी बिल्कुल ठीक हो गई।"

तो वे फौरन कहेगे—"आपके लडके को फायदा हो गया होगा, मगर हमने तो उस डाक्टर के कई 'केस' देखे, कोई अच्छा नही हुआ। और रामचरन तो उसी के इलाज से मर गया।"

आप अगर कहते हैं—कि "आजकल चोरबाज़ारी की तो हद हो गई है। हर चीज़ पर 'ब्लैक' हो रहा है।"

तो वे कहेगे—'ब्लैक तो होगा ही। लोगो के खर्चे पूरे नही पडते, ब्लैक न करे तो और क्या करे। तुम्हारे पास चीनी का कोटा होता तो तुम भी ब्लैक करते, तुम कब मान जाते।"

कोई अगर उनके सामने कहता है—"आज तो सर्दी बहुत ही ज़्यादा रही।"

वे उसकी भी फौरन काट करेंगे—"तुम्हे लगी होगी

लिए होता है कि उसने अपने मीठे व्यवहार से मर्य्यादा-पालन पर भी मिश्री की चाशनी चढाई होती है।]

[आम जनता के अधिक सम्पर्क मे आने वाले अफसरो को तो विशेषरूप से मिष्टभाषी और नम्र होना चाहिए। ऐसे ही अफसरों को लोग याद करते है।]

हमारे एक डाक्टर मित्र है जो शायद भारत के प्रधान मन्त्री की तरह व्यस्त रहते है। रात के बारह-बारह बजे तक रोगी उनके दवाखाने से नही टूटते। वे बराबर उन्हे देखते रहते है। उधर सुबह छै बजे से मरीजो को देखने घर से निकल पडते हैं। दिन मे उन्हे भोजन करने तक का समय नही मिलता। ऐसे व्यस्त आदमी का मिज़ाज चिडचिडा हो जाये तो कोई ताज्जुब की बात नही है। लेकिन उनमे इतना असाधारण सयम देखने को मिलता है कि कई बार आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। कभी उनके माथे पर शिकन नही आती। वे हरेक रोगी से इतनी मीठी, नम्रतापूर्ण और हमदर्दी से भरी बातचीत करते हैं कि मानो वह उनके घर का ही आदमी हो। उनका कहना है कि मैं रोगियो की जितनी ज्यादा सेवा करता हूँ, मुझे उतना ही अधिक सन्तोष और खुशी होती है। उनका नाम लोगो की ज़बान पर चढ गया है। उनके पास बहुत दूर-दूर से रोगी आते है। साथ ही उन्होने बहुत अच्छा पैसा भी कमाया है। मीठे व्यवहार का मीठा फल उन्हे प्रत्यक्षरूप से मिल रहा है।

दुकानदारो, वकीलो, एजेण्टो, एव सामाजिक कार्य-

कर्ताओ के लिए तो नम्र व्यवहार और शिष्ट भाषण विशेषरूप से ज़रूरी होता है। यह उनके पेशे मे भारी सहायक सिद्ध होता है।

○

कुछ लोगो की यह आदत होती है कि वे दूसरो की हर वात का विरोध करते हैं। उनका विरोध अक्सर तर्क-संगत भी नही होता। जैसे आप उनके सामने कहते है—

"अमुक डाक्टर वडा होशियार है। कल मैं उनके पास अपने लडके को ले गया था, उसे एक महीने से खाँसी ही नही जाती थी। लेकिन उनकी तीन दिन की दवा से ही खाँसी बिल्कुल ठीक हो गई।"

तो वे फौरन कहेगे—"आपके लड़के को फायदा हो गया होगा, मगर हमने तो उस डाक्टर के कई 'केस' देखे, कोई अच्छा नही हुआ। और रामचरन तो उसी के इलाज से मर गया।"

आप अगर कहते हैं—कि "आजकल चोरवाज़ारी की तो हद हो गई है। हर चीज़ पर 'व्लैक' हो रहा है।"

तो वे कहेगे—'व्लैक तो होगा ही! लोगो के खर्चे पूरे नही पडते, व्लैक न करें तो और क्या करें! तुम्हारे पास चीनी का कोटा होता तो तुम भी व्लैक करते, तुम कव मान जाते!"

कोई अगर उनके सामने कहता है—"आज तो सर्दी बहुत ही ज्यादा रही।"

वे उसकी भी फौरन काट करेंगे—"तुम्हे लगी होगी

ज्यादा सर्दी। हम तो दिनभर एक बनियान और कुर्ते मे घूमते रहे, कोई ज्यादा सर्दी नही थी।"

उनके सामने ज़िक्र जाता है कि—"किशन लाल ने अपना मकान बहुत अच्छा बनाया है।"

वे इस बात से भी सहमत नही होगे, कहेगे—"अजी वाह! क्या अच्छा बनाया है? आधे से ज्यादा तो पीली इंट लगवा दी हैं। पूरी चिनाई गारे की है। बीस हज़ार रुपया लगा दिया, कल को बेचने लगेगा तो दस भी मुश्किल से उठेगे।"

गरज़ यह कि उन्हे दूसरो की बात का विरोध करने की आदत पड जाती है। चाहे बात राजनीतिक की हो या इतिहास की, भूगोल की हो या घरेलू, वे उसका विरोध अवश्य करेंगे। कई बार अपने पक्ष के समर्थन मे वे बेतुकी बहस भी करते है। कहना न होगा कि विरोध की यह प्रवृत्ति असामाजिक होती है। ऐसे लोगो की बात वज़नदार नही समझी जाती। लोग उन्हे आलोचक समझकर आदर नही देते क्योकि ऐसे लोग किसी मज़बूत पृष्ठ-भूमि पर बातो का विरोध नही करते, अपितु उनकी दलीले थोथी होती है।

परस्पर वाद-विवाद की बात भी बहुत-कुछ ऐसी ही है। 'चाणक्य नीति' का कथन है कि परस्पर प्रेम कायम रखना है तो तीन बातें नहीं करनी चाहिए।—(१) आपस मे बहस, (२) रुपये-पैसे का लेन-देन, (३) उसकी ग़ैर-हाज़िरी मे उसकी पत्नी के पास जाना। कहना न

होगा कि तीनो बाते बडे मार्के की है। यहाँ मुख्य रूप से हमारा मतलब वाद-विवाद या बहस से है। प्राय· बहस-मुबाहिसे मे बात बढती और फिर बिगड़ती देखी जाती है। किसी भी मुद्दे पर वाद-विवाद करने का उद्देश्य यह होता है कि दोनो पक्ष किसी एक निर्णय पर पहुँचे। मगर इस उद्देश्य को कितने लोग समझते है ? कहना न होगा कि प्राय लोग इस उद्देश्य को नही समझते। इसी-लिए वाद-विवाद का फल अच्छा नही निकलता। आपस मे दो व्यक्तियो मे जब बहस छिडती है तो कोई-न-कोई मुद्दा अवश्य सामने होता है। लेकिन दोनो पक्ष अपनी बात कायम रखने और दूसरे की बात को गिराने की कोशिश करते है। विपक्ष की सच्ची बात या तर्कसगत दलील को ईमानदारी से मान लेने वाले लोग इने-गिने ही निकलते हैं, वर्ना आमतौर पर यही होता है कि विरोधी दलीलो से दोनो पक्ष अपने को लाछित महसूस करने लगते हैं। बातचीत मे गर्मी बढ जाती है। फिर मुद्दे की बात तो पीछे जा पडती है। दोनो व्यक्ति आक्षेपो पर उतर आते हैं। कई बार यह बहस गाली-गलौच और मारपीट मे समाप्त होती देखी जाती है। ऐसी घटनाएँ जीवन मे कडवाहट और व्यर्थ का क्लेश पैदा कर देती हैं। इसलिए बहस से हमेशा बचना चाहिए।

यदि आप बहस मे स्वय एक पक्ष हैं और यह देखते हैं कि दूसरा व्यक्ति बेकार मे विरोध कर रहा है तो निश्चय ही आपको बात का रुख बदलकर बहस समाप्त

ज्यादा सर्दी। हम तो दिनभर एक बनियान और कुर्ते मे घूमते रहे, कोई ज्यादा सर्दी नही थी।"

उनके सामने जिक्र जाता है कि—"किशन लाल ने अपना मकान बहुत अच्छा बनाया है।"

वे इस बात से भी सहमत नही होगे, कहेगे—"अजी वाह! क्या अच्छा बनाया है? आधे से ज्यादा तो पीली ईंट लगवा दी है। पूरी चिनाई गारे की है। बीस हज़ार रुपया लगा दिया, कल को बेचने लगेगा तो दस भी मुश्किल से उठेगे।"

गरज़ यह कि उन्हे दूसरो की बात का विरोध करने की आदत पड जाती है। चाहे बात राजनीतिक की हो या इतिहास की, भूगोल की हो या घरेलू, वे उसका विरोध अवश्य करेंगे। कई बार अपने पक्ष के समर्थन मे वे बेतुकी बहस भी करते है। कहना न होगा कि विरोध की यह प्रवृत्ति असामाजिक होती है। ऐसे लोगो की बात वज़नदार नही समझी जाती। लोग उन्हे आलोचक समझकर आदर नही देते क्योंकि ऐसे लोग किसी मज़बूत पृष्ठ-भूमि पर बातों का विरोध नही करते, अपितु उनकी दलीले थोथी होती है।

परस्पर वाद-विवाद की बात भी बहुत-कुछ ऐसी ही है। 'चाणक्य नीति' का कथन है कि परस्पर प्रेम कायम रखना है तो तीन बातें नहीं करनी चाहिए :—(१) आपस मे बहस; (२) रुपये-पैसे का लेन-देन, (३) उसकी ग़ैर-हाज़िरी मे उसकी पत्नी के पास जाना। कहना न

होगा कि तीनो बातें बडे मार्के की है। यहाँ मुख्य रूप से हमारा मतलब वाद-विवाद या बहस से है। प्राय· बहस-मुबाहिसे मे बात बढती और फिर बिगडती देखी जाती है। किसी भी मुद्दे पर वाद-विवाद करने का उद्देश्य यह होता है कि दोनो पक्ष किसी एक निर्णय पर पहुँचे। मगर इस उद्देश्य को कितने लोग समझते हैं? कहना न होगा कि प्राय लोग इस उद्देश्य को नही समझते। इसी-लिए वाद-विवाद का फल अच्छा नही निकलता। आपस मे दो व्यक्तियो मे जब बहस छिडती है तो कोई-न-कोई मुद्दा अवश्य सामने होता है। लेकिन दोनो पक्ष अपनी बात कायम रखने और दूसरे की बात को गिराने की कोशिश करते हैं। विपक्ष की सच्ची बात या तर्कसंगत दलील को ईमानदारी से मान लेने वाले लोग इने-गिने ही निकलते हैं, वर्ना आमतौर पर यही होता है कि विरोधी दलीलो से दोनो पक्ष अपने को लाछित महसूस करने लगते हैं। बातचीत मे गर्मी बढ जाती है। फिर मुद्दे की बात तो पीछे जा पडती है। दोनो व्यक्ति आक्षेपो पर उतर आते हैं। कई बार यह बहस गाली-गलौच और मारपीट मे समाप्त होती देखी जाती है। ऐसी घटनाएँ जीवन मे कडवाहट और व्यर्थ का क्लेश पैदा कर देती हैं। इसलिए बहस से हमेशा बचना चाहिए।

यदि आप बहस मे स्वय एक पक्ष हैं और यह देखते है कि दूसरा व्यक्ति बेकार मे विरोध कर रहा है तो निश्चय ही आपको बात का रुख बदलकर बहस समाप्त

कर देनी चाहिये। जव आप समझते हैं कि दूसरा पक्ष गलती पर है तो आपको वह गलती नही करनी चाहिए। ये वातें शुरू-शुरू मे छोटी दिखाई देती हैं, लेकिन बात का रूप वडा होते देर नही लगती। थोडी सूझ-वूझ से ऐसी अवाछित घटनाओ से बचा जा सकता है।

हँसी-मज़ाक से जहाँ वातावरण मे गुदगुदी आती है। हँस-वोलकर लोग जी हल्का करते हैं, वहाँ कई वार हँसी रार की जड भी वन जाती है। किन्तु इससे हमारा मतलव यह नही कि लोग हँसी-मजाक ही न करें। वास्तव में हँसी-मजाक एक कला है। यदि किसी को इस कला के 'गुर' आते हैं तो वह 'मीर महफिल' वन जाता है। उस व्यक्ति के विना गोष्ठी पूरी नही होती; चौकडी नही जमती। लेकिन अनाडीपन से किया हुआ हँसी-मज़ाक अक्सर तकरार पैदा कर देता है। इस सम्वन्ध मे सिर्फ एक ही बात ध्यान मे रखने लायक होती है कि [आपका हँसी-मज़ाक ऐसा नही होना चाहिए जिससे किसी का दिल दुखे, कोई अपने को अपमानित महसूस करे। इसके अलावा यदि आप दूसरो से हँसी करते है और वे बुरा नही मानते तो आपको भी दूसरो के मज़ाक से चिढना नही चाहिए।]

हँसी-मज़ाक़ आमोद-प्रमोद के लिए किया जाता है। इस उद्देश्य को हमेशा ध्यान मे रखना चाहिये।

[वातचीत मे दूसरे लोगो की निजी वातो की गहराई में जाना भी अच्छा नही होता।] कुछ व्यक्तियो मे ऐसी

आदत पाई जाती है कि वे हमेशा दूसरो के राज़ जानने की कोशिश करते हैं। जैसे—'अमुक व्यक्ति को कितनी आमदनी है ? उसके यहाँ खाना कैसा बनता है ? मियाँ-बीवी मे लडाई-झगडा रहता है ! उन बाप-बेटो मे नही बनती है ! अमुक आदमी की बीवी का ज़ेवर गिरवी पड़ गया है ! उसने किसी से साल-भर पहले सौ रुपये उधार लिये थे और अभी तक नही दिये, आदि। ये ऐसी बेकार की बाते होती हैं जिनके जानने-न-जानने से कोई मतलब हल नही होता। इन बातो मे कई बार लोग इतने उत्सुक देखे जाते हैं कि वे सीधे प्रश्न पूछने लगते हैं :—

"क्यो जी ! आपको कितनी तनखा मिलती है ?"

"कल आप दिनेश के साथ कहाँ जा रहे थे ?"

'आप लडकी की शादी क्यो नही करते ? काफी स्यानी हो गई है !"

सुनने वाला ऐसे प्रश्नो का कभी स्वागत नही करता। कुछ व्यक्ति ऐसे प्रश्न वडे भद्दे ढग से भी पूछते हैं —

"कहो जी ! दुकानदारी कैसी चल रही है ? दाल-रोटी के लायक तो पैसे आ ही जाते होगे ?"

"कहिये आपके भाई के साथ बटवारे की बात कैसे निबटी ? वटवारा हो गया या नही ?"

"भण्डारी जी के उधार के रुपये आपने दे दिये या नही ?"

[हरेक व्यक्ति के जीवन मे कही-न-कही गोपनीयता

होती है। वह उसका उघाडा जाना पसन्द नही करता। इसीलिए ऐसी चर्चा उसे अच्छी नही लगती। बहुत वार लोग ऐसे प्रश्नो का करारा जवाव भी दे देते है'—

"रुपए के लेने-देने का मामला मेरे और भण्डारी जी के वीच है। आपको क्या मतलव ? आप क्यो पूछते हैं ?"

ऐसे मौको पर विचारणीय वात यह होती है कि जव हम अपनी गोपनीयता कायम रखना चाहते हैं तो दूसरो के राज जानने की कोशिश क्यो करे ? वस्तुत. ऐसी वाते अपने घनिष्ठ मित्रो से भी नही पूछनी चाहिए। जो लोग ऐसी बातो के अभ्यासी होते हैं वे हल्के समझे जाते है। प्राय लोग उनसे वात करना पसन्द नही करते। समाज मे उन्हे वाछित आदर नही मिलता।

O

नम्रता के समान ही दूसरो को आदर देना और उनकी सराहना करना सफल लोक-व्यवहार का मूल-मन्त्र है। आप स्वय आदर और सम्मान चाहते हैं तो पहले दूसरो का मान कीजिए। निश्चय ही प्रतिदान मे आपको भी मान मिलेगा।

कई वार लोग सराहना का अर्थ खुशामद लगाते हैं। किन्तु इन दोनो मे वहुत अन्तर है। खुशामद एक गिरी हुई वात होती है और उसके पीछे आदमी का उद्देश्य स्वार्थ-सिद्धि होता है, जवकि सराहना एक आदरसूचक और परिष्कृत वात होती है।

समाज मे रहते हुए, हमारा काम हर तरह के छोटे-

वडे, ऊँचे-नीचे, और अच्छे-बुरे आदमियो से पडता है। सराहना और आदर देने का नुस्खा सिर्फ कुछ पढे-लिखे या ऊँचे कहे जाने वाले लोगो के लिए नही है, बल्कि यह मन्त्र हर अदना-आला पर लागू होता है, चाहे वह मजदूर है या अफसर, सेठ जी है या कुली है। आमतौर पर हम लोग मजदूरो, चमारों, मेहतरो और ऐसे ही छोटे कहे जाने वाले लोगो को गिरी हुई दृष्टि से देखते हैं, उनके व्यक्तित्व को स्वीकार नही करते। इसीलिए हम उनसे ढग की वातचीत भी नही करते। लेकिन समाज एक मशीन की तरह है। मशीन का हर पुर्जा, चाहे वह छोटा है या वडा, मशीन को चालू रखने के लिए जरूरी होता है। इसी तरह समाज मे इन छोटे कहे जाने वाले लोगो की भी उतनी ही जरूरत है, जितनी बडे माने जाने वाले लोगो की है। इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् सामाजिक दृष्टि से दोनो मे कोई अन्तर नही रह जाता। फिर मन और मस्तिष्क तो सभी मे होता है। आदर और अपमान को सभी लोग समझते हैं। इसके अतिरिक्त आज के युग का भी यह तकाजा है कि पिछड़े हुए लोगो की अवहेलना नही की जानी चाहिए।

यहाँ हमने छोटे-बड़े लोगो की चर्चा सिर्फ इसलिए की है कि आगे जो उदाहरण हमे देना है, उसमे एक ऐसे छोटे पात्र का जिक्र आता है। अव आदर और सराहना का प्रत्यक्ष उदाहरण सुनिए :—

मुहल्ले की महतरानी कुछ दिन के लिए गाँव चली

गई थी ; एक दूसरी महतरानी को उस मुहल्ले के पाखाने साफ करने का काम सुपुर्द कर गई थी। नई महतरानी पुरानी से अच्छा काम करती थी। लेकिन शुरू के कुछ दिनो मे ही उसने अच्छा काम किया ; बाद मे लापरवाही बरतने लगी। हमारी पडौसिन बिब्बो देवी एक दिन महत-रानी पर बरस पडी, बोली—"अरी, तू तो बडी हरामखोर है। पाखाना कमाती है कि बला टालकर जाती है। सारी टट्टी गन्दी पडी रहती है, नालो का पानी तक साफ नही करती। याद रखना मैं तुझे एक पैसा नही दूंगी। पाखाना धोने का कभी नाम नही लेती। जो तेरे दिन सीधे हैं तो ठीक से काम कर।"

स्पष्ट था कि बिब्बो देवी ने महतरानी के व्यक्तित्व का अनादर किया और उसे अपमानित किया। उसे यह चोट बर्दाश्त न हुई और उसने भी जली-कटी भाषा में जवाब दिया—"तू ही एक बडी सफाई वाली बनी है। जैसा हम पे होता है वैसा करते हैं। जब घडे मे पानी ही नही रहता तो कहाँ से धोऊँ? हम कोई तेरे 'जड खरीद' गुलाम है कि इतना रौब दिखाती है? हम सिर पर गदगी ढोते है, तब पैसा लेते हैं। तू कोई मुफ्त मे बख्शीश दे देती है?"

बिब्बो देवी को तो यह सुनकर जैसे पलीता ही लग गया। वे और तेज़ी से भडकी—"अरीक मज़ात, तू हमारे मुंह लगती है?"

और इसी तरह बात काफी बढ गई, मगर नतीजा

कुछ नही निकला। उल्टा तीन दिन तक महतरानी ने उनका पाखाना ही साफ नही किया। और बिब्बो देवी को महतरानी की जवाबदेही कई दिन तक सालती रही। वे जगह-जगह महतरानी की उद्दण्डता और ज़बान-दराज़ी की शिकायत करती रही।

महतरानी से सफाई की शिकायत हमे भी थी। पत्नी ने एक दिन उससे कहा—"अरी महतरानी! तू तो बडा सफाई से पाखाना कमाती थी। हमने तो बडी सुख की साँस ली थी कि चलो, महतरानी अच्छी आ गई। बेचारी बडी भली है। मेहनत और होशियारी से काम करती है। पुरानी महतरानी तो बडा झिखाती थी। मगर अब तुझे दो दिन से क्या हो गया है? पाखाने मे वह सफाई नही रहती! तेरा जी तो ठीक रहता है? कुछ तकलीफ तो नही है?"

पत्नी की बातचीत महतरानी को बहुत भायी, उसने बडी मुलायमियत से कहा—"मेरी आदत काम से जी चुराने की नही है। किसी ठिकानेदार को मुझसे शिकायत नही है। बीबी जी! इन दिनो मेरे दोनो बच्चे बीमार थे। घर पर उन्हें अकेला छोडकर ठिकाने कमाने आती थी। इसीलिए जल्दी-जल्दी मे सफाई छूट जाती होगी। आज ज़रा उनकी तबीयत ठीक हुई है। सो अब देख लेना कभी आपको टोकने की ज़रूरत नही पडेगी।"

और वास्तव मे फिर वह ऐसे अच्छे ढग से सफाई करती रही कि हमे कुछ कहना ही नही पडा।

उपर्युक्त दोनो महिलाओ के व्यवहार का अन्तर स्पष्ट है। बिब्बो देवी ने न तो उसके काम की सराहना की, न उसके व्यक्तित्व को आदर दिया। उल्टे भर्त्सना की और अपमान किया। फलस्वरूप महतरानी पर प्रतिक्रिया भी वैसी ही हुई।

दूसरी ओर हमारी पत्नी के कथन पर वह इसलिए नम्र रही कि उसे अपने काम की सराहना और व्यक्तित्व का आदर मिला। स्पष्ट है कि कुशल चित्रकार की एक कूँची ही चित्र को सुन्दर बनाकर उसमे जान डाल देती है, जबकि अनाडी द्वारा चलाई गई कूँची से सारा चित्र ही भोडा हो जाता है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि आदर और सराहना प्रत्येक व्यक्ति को सुखकर लगती है। इस गुरु-मन्त्र को जानने वाले व्यक्ति लोक-व्यवहार मे बडे सफल होते है। लोक-व्यवहार की कुशलता जीवन मे कामयाबी लाती है।

एक बार ऐसे ही एक व्यवहार-कुशल व्यक्ति ने दो परिवारो को बर्बादी से बचा दिया। दिल्ली मे दो परिवारो मे कुछ झगडा छिड गया, और बात इतनी बढी कि मुकद्दमेबाजी शुरू हो गई। श्यामनाथ का पक्ष मजबूत था, गोपालदास का पक्ष कमजोर पडता था। श्यामनाथ गोपालदास की अपेक्षा आर्थिक रूप से भी सम्पन्न थे। दोनो पक्षो के शुभचिन्तको ने आपस मे फैसला कराना चाहा। सभी ने श्यामनाथ पर दबाव डाला, समझाया, उपदेश दिए। किन्तु वे फैसले के लिए रजामन्द ही न हुए। मगर बिना

उनके राज़ी हुए कोई काम नही बनता था। अन्त में एक वकील महोदय मनोवैज्ञानिक आधार लेकर आगे बढे। वे दोनो पक्षो के रिश्तेदार भी थे, लेकिन दोनो के घर पर उनका आना-जाना बहुत ही कम होता था, क्योकि वे व्यस्त रहने वाले व्यक्ति थे। जब वे श्यामनाथ के पास पहुँचे तो उन्होने देखा कि छोटी-सी कोठी के सामने श्यामनाथ ने एक छोटी सुन्दर फुलवारी और छोटा लॉन बना रखा है। श्यामनाथ रोज़ फुलवारी मे पानी देते, क्यारियाँ साफ करते और फुलवारी दुरुस्त रहे इस बात का विशेष ध्यान रखते थे।

चतुर वकील महोदय ने नुक्ता पकड लिया। उन्हे यह समझते देर न लगी कि श्यामनाथ को फुलवारी का विशेष शौक है। उन्होने श्यामनाथ से फैसले की कोई बात नही छेडी। अपितु फुलवारी-सम्बन्धी उनके शौक की सराहना शुरू कर दी, बोले—"आपने इस छोटी-सी जगह मे फुलवारी का बडा ही सुन्दर सैटिंग किया है। इसे देखकर तो मेरी तबीयत ऐसी मचल रही है कि रोज शाम को यही आ जाया करूँ।"

वकील साहब की बात सुनकर श्यामनाथ उत्साह से खिल उठे, बोले—"भाई साहब! मुझे न तो सिगरेट का शौक है, न शराब का; बस, यही एक शौक है, आइये आपको बगीचा दिखाऊँ।" और वह फुलवारी मे वकील साहब को लाकर फूलो और पौधो के बारे में बताने लगे।

इधर वकील साहब ने भी उनकी बातो मे असाधारण

दिलचस्पी दिखाई। लॉन को देखकर कहने लगे—"आपने लॉन मे घास क्या लगवाई है बिल्कुल मखमल का गद्दा बिछा दिया है। मैंने यह घास या तो गाधी जी की समाधि पर देखी थी या अब आपके यहाँ देख रहा हूँ।" वकील साहब जूते-मौज़े उतारकर लॉन की घास पर टहलने लगे; बोले—"बडा लुत्फ और ताज़गी मालूम पडती है यहाँ नगे पाँव चलने पर।"

श्यामनाथ ने उन्हे विस्तार से बताया कि कहाँ से उन्होने यह घास मँगाई, किस स्पेशल तरीके से यह लगाई जाती है और क्या-क्या एहतियात बरतनी पडती है।

वकील साहब ने फिर फूलो की सराहना शुरू की—"फूलो के चुनाव मे भी आपकी पसन्द गज़ब की है। आज-कल लोग ज्यादातर रग-बिरगे अग्रेज़ी फूल ही लगाते हैं। मगर देखता हूँ आपने गुलाब, मोतिया, चमेली के अपने देसी फूल भी लगाये है।"

श्यामनाथ बोले—"अग्रेजी फूल सिर्फ खुशनुमा ही लगते है, लेकिन उनमे खुशबू नही होती। मैं तो यह मानता हूँ कि बगीचे मे आकर फूलो की खुशबू से जब तक मन मस्त न हो जाए तो बगीचे का फायदा ही क्या?"

"वाकई बात तो यही है!" वकील साहब ने उनका समर्थन किया। श्यामनाथ वकील की बातो से इतने गद्-गद हो गए कि उन्होने अपने नौकर से कहा कि वह वकील साहब के लिए फौरन ही मोतिया के फूलो का एक

को मिला। प्रोफेसर महोदय उस समय घर नही थे। पत्र पढकर माया देवी आग-बबूला हो गई। उनका पुत्र चोरी करे इससे उन्हे बडी ग्लानि हुई; फलत: उन्होने रमेश को मार लगाई और खूब अच्छी-बुरी कही। परन्तु रमेश यह स्वीकार नही करता था कि उसने चोरी की। एक बार और भी वह अपने पिता की जेब से पैसे चुरा चुका था।

शाम को प्रोफेसर साहब के घर आने पर पत्नी ने उन्हे अध्यापक का पत्र दिखाया, और रमेश की शिकायत की। प्रोफेसर कुछ देर के लिए विचारमग्न हो गये। अन्त मे उन्होने एक योजना बनाई और उसे अपनी पत्नी को भी समझा दिया। रात्रि को जब वे क्लब से लौटे, तो रमेश खाना खाकर बिस्तर पर लेट चुका था। उसे भय था कि माँ उसकी शिकायत पिता से अवश्य करेगी और पिता की ओर से उसे ताडना सहनी पडेगी। इसलिये उसने ऐसा दर्शाया कि वह सो गया है। प्रोफेसर भी यही चाहते थे। और तभी पत्नी ने उनसे शिकायत की। सुन-कर प्रोफेसर कहने लगे—"मुझे यकीन नही आता कि हमारे रमेश ने किताब चुराई होगी। रमेश को मैं अच्छी तरह समझता हूँ। वह इस तरह की गन्दी हरकत कभी नही कर सकता।" पत्नी ने कहा—"तो क्या उसके अध्यापक ने झूठी शिकायत लिख भेजी है?"

"उन्होने झूठी न लिखी हो, मगर यह हो सकता है कि उस लड़के ने ही मास्टर साहब से रमेश की झूठी

शिकायत की हो और मास्टर साहब उसकी ज्यादा छानबीन न कर पाए हो। आखिर वह किसी की किताब क्यो चुराएगा! उसके पास अपनी सब किताबें हैं। इसके अलावा रमेश समझदार है। वह इस बात को अच्छी तरह समझता है कि वह एक अच्छे परिवार और अच्छे माता-पिता का लडका है। मैं कभी इस बात को नही मान सकता कि हमारा रमेश चोरी करेगा। वह सैकड़ो लडकों से अच्छा है ···।"

सोने का बहाना करते हुए रमेश ने यह सब-कुछ सुना और अगले दिन से ही उसका व्यक्तित्व बदल गया, क्योकि चतुर प्रोफेसर महोदय ने बालक मे अपने विश्वास की स्थापना कर दी थी। साथ ही बालक के अच्छे चरित्र की सराहना भी उसमे निहित थी। रमेश ने स्वय ही अपने पिता के विश्वास की रक्षा का दायित्व सँभाल लिया।

इस घटना के पश्चात् चोरी आदि की शिकायत तो सुनी ही नही गई। अपितु रमेश ने पढाई-लिखाई मे भी काफी उन्नति दिखाई। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि सूझबूझ द्वारा उठाया हुआ क़दम अनेक उलझी हुई समस्याओं को आसानी से हल कर देता है।

○

अपनी-अपनी ही मत कहिए!

अपनी-ही-अपनी बात कहना, दूसरे की न सुनना—यह भी लोकव्यवहार की दृष्टि से एक कमी है; दुर्गुण है।

बहुत लोगो में यह आदत पाई जाती है कि वे दूसरो की बात पर ध्यान न देकर अपनी ही बात आगे रखते हैं। अदबदाकर ऐसे लोग ज्यादा बोलने के आदी होते हैं जिनका कि हम पीछे भी ज़िक्र कर चुके हैं।

जब कोई व्यक्ति अपनी-ही-अपनी बात कहता है और दूसरो की बात को पीछे डालता चला जाता है तो लोग उससे कतराने लगते है। वह एक 'बोर' करने वाला व्यक्ति मान लिया जाता है। परोक्ष रूप से अपनी-ही-अपनी कहने का अर्थ यह होता है कि वह व्यक्ति अपने को ही ज्यादा महत्त्व देता है, दूसरो की बात और व्यक्तित्व को वह गौण समझता है। लेकिन सचाई यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की बात मे कोई-न-कोई वज़न होता है। हमे दूसरो की बात का भी मूल्याकन करना चाहिए। अनेक बार तो छोटे और बेपढे कहे जाने वाले लोग ऐसे कांटे की बात कहते हैं कि सुनकर दंग रह जाना पडता है।

अपनी-ही-अमनी कहने वालो मे एक कमी यह भी पाई जाती है कि वे हरेक विषय की बातो मे अपना दखल जताते हैं। चर्चा चाहे खेल के मैदान की हो या राजनीति की, बागबानी की हो या ब्लैकमार्केट की, वे ज़रूर अपना फतवा उस सम्बन्ध मे दे देंगे, अपना कोई अनुभव गढकर सुना देंगे। लेकिन जानकार लोगो के सामने उनके दखल का थोथापन बहुत जल्दी ज़ाहिर हो जाता है।

अधिक बोलने से प्राय व्यक्ति की बात मे असंबद्धता

आ जाती है । उसे 'कही की ईंट और कहीं का रोडा' मिलाना पड़ता है । स्पष्ट है कि ऐसी असम्बद्ध बातें न तो लोगो को प्रिय लगती हैं और न उनमें कोई तत्व होता है । सच तो यह है कि बात की कद्र तभी होती है, जब कि वह नपे-तुले शब्दो मे और गरिमापूर्वक कही जाए । ऐसी ही बाते व्यक्ति के गौरव और मान को बढाती हैं । थोथी बाते जीवन को ही थोथा बना देती हैं ।

⊙⊙

ऊँचा स्टैण्डर्ड

आज प्राय: सारे ससार मे ही ऊँचे स्टैण्डर्ड की धूम मची है। प्रत्येक देश अपने रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर रहा है। हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री नेहरू भी ऊँचे स्तर के रहन-सहन के हामी थे। ऊँचे स्टैण्डर्ड का अर्थ है जीवन के लिए अधिक सुख-सुविधाएँ। हमारे देश मे भी बावजूद महँगाई और दूसरी कठिनाइयो के जीवन का स्तर ऊँचा उठता जा रहा है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इस ऊँचे स्टैण्डर्ड की दौड मे वास्तविक जीवन का स्तर भी कुछ ऊँचा उठ रहा है ? इस सम्बन्ध मे एक कथा सुनिए :—

"माधव प्रसाद बारह वर्ष से गाँव नही गया था। वह सात वर्ष की अवस्था से अपनी नानी के पास मधुपुर गाँव मे रहकर पढा था। कस्बे का स्कूल गाँव से लगभग डेढ मील दूर था। वह रोज गाँव से पैदल स्कूल मे जाया करता था। हाई स्कूल की परीक्षा उसने वही से पास की। कालेज की पढाई के लिए, फिर वह शहर मे आ गया। उसे नानी का गाँव छोडे बारह वर्ष हो चुके थे। शहर के कालेज से उसने इण्टर किया, फिर बी० ए०

किया। संयोग की बात कि ग्रेजुएट होते ही उसे नौकरी मिल गई, और वह नौकरी मे फँसकर रह गया। इस सारे समय मे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ रही कि इच्छा रहते हुए भी वह मघुपुर न जा सका। गाँव मे बीते बालकपन की मधुर यादे और नानी का लाड़-दुलार उसे बरबस याद आता रहता था। और बहुत बार उसकी तबीयत उड़कर मधुपुर पहुँच जाने की होती थी।

माधव प्रसाद को जब-तब गाँव से आने-जाने वाले लोग मिलते रहते थे। वे गाँव का हाल-चाल सुनाते कि अब गाँव मे बडी तरक्की हो रही है। नए पक्के मकान बनते जा रहे हैं। कस्बे से गाँव तक पक्की डामर की सड़क बन गई है और उस पर अब रिक्शे चलने लगे हैं। गाँव मे बिजली आ गई है। उसका स्कूल अब इण्टर-कालेज बन गया है।

गाँव मे माधव प्रसाद के घर के पास ही चौधरी प्रीतमसिंह की हवेली थी। वे गाँव के सम्पन्न व्यक्ति थे। चौधरी का लडका श्यामू माधव प्रसाद का मित्र था। दोनो मे खूब पटती थी। हवेली के बाहर ही चौधरी की बडी लम्बी-चौडी बैठक थी जिसमे ऊँचे-ऊँचे दो-चार पलंग पड़े रहते थे। एक पलंग पर चौधरी प्रीतमसिंह बैठे बडा लम्बा-चौडा हुक्का गुडगुडाते रहते थे। सेहन मे एक ओर घनी छाया का नीम का पेड़ था जिसके नीचे दो खुण्डी भैंसे बँधी रहती थी। एक ओर ऊँचे-ऊँचे दो बैलो की जोड़ी नाँद मे सानी खाती रहती थी।

हवेली के सेहन मे माधव और श्यामू दिन-भर खेलते रहते थे। कभी नीम पर चढते ; कभी गुल्ली-डण्डा खेलते , और कभी भैसों के थनो से दूध की धार अपने मुंह मे [illegible]ते थे।

[illegible]धरी प्रीतमसिंह बड़े मिलनसार आदमी थे। आस-[illegible]स के गाँवो के लोग भी उनका आदर करते थे। मेहमाननवाज़ी का चौधरी को बडा शौक था ; एक-दो मेहमान सदा ही उनकी बैठक पर बने रहते थे। जो कोई भी उनसे मिलने आता, बडे प्रेम से उसकी आवभगत करते। अतिथियो को दूध पिलाना वे कभी नही भूलते थे। मौसम के दिनों में अपने बाग के आम चौधरी साहब हर व्यक्ति को खिलाते थे।

उनके यहाँ काम करने वाले नौकर-चाकरों को भी कभी किसी बात की कमी न रहती थी। कोई चौधरी से ईंधन-उपले माँग ले जाता। किसी की नाज-पात से सहायता करते। किसी की लडकी की शादी मे कपडे-लत्ते दे दिए। और छाछ तो उनके घर से रोज़ ही सेरो के हिसाब से मे बट जाती थी। चौधरी साहब लोगो की रुपए-पैसे की गरज़ भी पूरी करते रहते थे , लेकिन वे महाजन की तरह किसी से सूद नही लेते थे। उन पर सब तरह ईश्वर की कृपा थी। हर अदना-आला के काम आने वाले आदमी थे चौधरी प्रीतमसिंह।

और आज बारह वर्ष बाद ऐसा सयोग आया कि माधव प्रसाद मधुपुर को चल पड़ा। बीस मील का सफर

रेल से तय करना पडता था। रेल मे बैठे-बैठे उसके मन मे गाँव की पुरानी स्मृतियाँ उभर-उभरकर आ रही थी। उसके मन मे एक पुलक और गुदगुदी हो रही थी। इन बारह वर्षों मे मधुपुर कैसा हो गया होगा ? छोटे बच्चे अब जवान हो गए होगे। बहुत-से बूढे मर गए होगे। बहुत लोगो के चेहरे भी अब बदल गए होगे।

रेल से उतरकर जब माधव गाँव पहुँचने के लिए रिक्शे मे बैठा, तो एक चपरासी की तरह का एक और आदमी रिक्शे मे बैठ गया। अधेड उम्र, खिचडी-से बाल, दर्म्याना कद, और साँवले रग का वह आदमी एक साधारण-सी खाकी वर्दी पहने हुए था। रिक्शा चला तो उस आदमी ने माधव से पूछा "आप कहाँ जाओगे बाबू जी ?"

"मधुपुर।" माधव ने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया।

"क्या आप मधुपुर ही रहते हैं ?" चपरासी ने फिर पूछा।

"अब तो नही रहता, लेकिन मैं वहाँ काफी रहा हूँ। आज तो बारह वर्ष बाद मधुपुर जा रहा हूँ।"

चपरासी ने बात और आगे बढाई—"बाबू जी ! मैं भी आज बीस वर्ष बाद मधुपुर जा रहा हूँ" अब तो चपरासी ने अपनी पूरी कथा कहनी शुरू कर दी—"मैं मधुपुर के पास ही जो नगला है वहाँ का रहने वाला हूँ। मगर इधर बीस बरस से तहसील की नौकरी मे हूँ। बाबू जी ! जगह-जगह को बदली होती रही सो बालबच्चे भी साथ ही रहे। आप मधुपुर मे चौधरी प्रीतमसिह को तो जानते

हवेली के सेहन मे माधव और श्यामू दिन-भर खेलते रहते थे। कभी नीम पर चढते, कभी गुल्ली-डण्डा खेलते ; और कभी भैंसो के थनो से दूध की धार अपने मुँह मे लगाते थे।

चौधरी प्रीतमसिंह बड़े मिलनसार आदमी थे। आस-पास के गाँवो के लोग भी उनका आदर करते थे। मेह-माननवाज़ी का चौधरी को बडा शौक था ; एक-दो मेहमान सदा ही उनकी बैठक पर बने रहते थे। जो कोई भी उनसे मिलने आता, बडे प्रेम से उसकी आवभगत करते। अतिथियो को दूध पिलाना वे कभी नही भूलते थे। मौसम के दिनों मे अपने बाग के आम चौधरी साहब हर व्यक्ति को खिलाते थे।

उनके यहाँ काम करने वाले नौकर-चाकरो को भी कभी किसी बात की कमी न रहती थी। कोई चौधरी से ईंधन-उपले माँग ले जाता। किसी की नाज-पात से सहा-यता करते। किसी की लडकी की शादी मे कपडे-लत्ते दे दिए। और छाछ तो उनके घर से रोज़ ही सेरो के हिसाब से मे बट जाती थी। चौधरी साहब लोगो की रुपए-पैसे की गरज़ भी पूरी करते रहते थे ; लेकिन वे महाजन की तरह किसी से सूद नही लेते थे। उन पर सब तरह ईश्वर की कृपा थी। हर अदना-आला के काम आने वाले आदमी थे चौधरी प्रीतमसिंह।

और आज बारह वर्ष बाद ऐसा सयोग आया कि माधव प्रसाद मधुपुर को चल पडा। बीस मील का सफर

रेल से तय करना पडता था। रेल मे बैठे-बैठे उसके मन मे गाँव की पुरानी स्मृतियां उभर-उभरकर आ रही थी। उसके मन मे एक पुलक और गुदगुदी हो रही थी। इन बारह वर्षों मे मधुपुर कैसा हो गया होगा ? छोटे बच्चे अब जवान हो गए होगे। बहुत-से बूढे मर गए होगे। बहुत लोगो के चेहरे भी अब बदल गए होगे।

रेल से उतरकर जब माधव गाँव पहुँचने के लिए रिक्शे मे बैठा, तो एक चपरासी की तरह का एक और आदमी रिक्शे मे बैठ गया। अधेड उम्र, खिचड़ी-से बाल, दर्म्याना कद, और साँवले रग का वह आदमी एक साधारण-सी खाकी वर्दी पहने हुए था। रिक्शा चला तो उस आदमी ने माधव से पूछा "आप कहाँ जाओगे बाबू जी ?"

"मधुपुर।" माधव ने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया।

"क्या आप मधुपुर ही रहते हैं ?" चपरासी ने फिर पूछा।

"अब तो नही रहता, लेकिन मैं वहाँ काफी रहा हूँ। आज तो बारह वर्ष बाद मधुपुर जा रहा हूँ।"

चपरासी ने बात और आगे बढाई—"बाबू जी! मैं भी आज बीस वर्ष बाद मधुपुर जा रहा हूँ" अब तो चपरासी ने अपनी पूरी कथा कहनी शुरू कर दी—"मैं मधुपुर के पास ही जो नगला है वहाँ का रहने वाला हूँ। मगर इधर बीस बरस से तहसील की नौकरी मे हूँ। बाबू जी ! जगह-जगह को बदली होती रही सो बालबच्चे भी साथ ही रहे। आप मधुपुर मे चौधरी प्रीतमसिंह को तो जानते

होगे ?"

"हाँ-हाँ ! उनकी हवेली तो हमारे मकान के पास ही है।"

माधव ने कहा, "मगर प्रीतमसिंह तो मर चुके।"

"हाँ सुना तो मैंने भी है कि वे गुजर गए। मगर बाबू जी ! हीरा आदमी था। मेरी उनके पास बहुत उठ-बैठ थी। जब भी उनके पास गया कभी खाली हाथ नही लौटाया। और मुझसे इतना प्रेम करते थे कि मेरे लडके को कलक्टर से कहकर उन्होने नौकरी पर लगवाया। बडे गरीबपरवर आदमी थे। अब तो उनका लडका श्यामू भी काफी बडा होगा। मैंने उसे गोद खिलाया है।"

"हाँ, श्यामू की तो शादी हो चुकी, अब उसके बच्चे हैं।" माधव को लगा कि इस आदमी की सूरत पहचानी हुई-सी है, और फिर उसे याद आया कि उसने छुटपन मे उसे प्रीतमसिंह के पास आते-जाते देखा है। तब वह जवान था, लेकिन अब जवानी उम्र की झुर्रियो मे खो गई है।

चपरासी फिर कहने लगा—"आज श्यामू के नाम एक इत्तला लेकर आया हूँ। उस पर दस्तखत कराने हैं। सभी लोगो से गाँव मे मिलना भी है, बीस बरस बाद आया हूँ। रात को तो चौधरी के यहाँ ही रहूँगा। सुबह वापस जाऊँगा।"

जब रिक्शा मधुपुर के अड्डे पर पहुँचा तो शाम होने मे कुछ देर थी। दोनो मुसाफिरो ने अपनी-अपनी राह

ली। माधव ने देखा कि गाँव मे बारह वर्ष में काफी परि-वर्तन ग्रा गया है। रिक्शे के अड्डे पर चाय-बिस्कुट की दुकाने खुल गई है। गाँव के भीतर जाने वाली कच्ची धूलभरी सडक कोलतार की बन चुकी है और सड़क के किनारे-किनारे बिजली के खम्भे गड़े है। बहुत मकान पक्के बन गए है और उनमे से रेडियो के फिल्मी गानों की धुन फूट-फूटकर बाहर सुनाई दे रही है।

माधव घर पहुँचा तो नानी ने छाती से लगा लिया। लाड-दुलार किया, बलैयाँ ली। उसकी ग्राँखो मे ग्राँसू भर ग्राए। फिर वह माधव के लिए खाना बनाने में जुट गई ग्रौर माधव श्यामू से मिलने चल दिया। जब वह श्यामू की हवेली के ग्रहाते मे घुसा तो देखा कि वहाँ का सारा नक्शा ही बदल गया है। हवेली के ग्रगले हिस्से को ग्राधु-निक कोठी की शक्ल दे दी गई है। सेहन मे लॉन बना दिया गया है। एक ओर बेडमिण्टन खेलने का जाल लगा है। जिस नीम के नीचे चौधरी की दो खुण्डी भैंसें झूलती रहती थी, वहाँ ऊँचे-ऊँचे ग्रल्सेशन कुत्तो का एक जोडा बँधा है जो किसी के भी ग्रहाते मे घुसने पर बेसाख्ता भौंकते है। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो गया है।

सेहन पार करके जब माधवप्रसाद बरामदे में पहुँचा तो देखा कि चौधरी की बैठक की जगह ड्राइङ्ग-रूम बन गया है। अब वहाँ ऊँची-ऊँची खाटें नही हैं बल्कि सोफा-सैट पडे हैं। खिडकी ग्रौर दरवाजो पर बढिया पर्दे झूल रहे हैं। बरामदे में ग्राठ-दस साल की दो लडकियाँ खेल

रही हैं। उनके बाल जापानी ढग से कटे हुए थे। वे ऊँची-ऊँची रगीन फ्रॉक पहने थी और पैरो मे मोज़े और जूते कसे थे। ड्राइङ्ग-रूम से रेडियो मे कोई अग्रेजी धुन बज रही थी और लड़कियाँ उस पर ट्विस्ट करने की अधकच्चरी कोशिश कर रही थी। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो गया था!

माधवप्रसाद ने समझ लिया—बच्चे श्यामू के ही हैं।

उसने बच्चो से पूछा—"श्यामू है ?"

बडी लड़की ने कहा—"आप पापा जी को पूछ रहे हैं ?"

"हाँ।"

इसी बीच छोटी लडकी बालसुलभ चपलता के साथ, हवेली के भीतर को दौडती हुई यह कहती गई— "मैं उन्हे अभी बुलाकर लाती हूँ। वे मम्मी के साथ चाय पी रहे हैं।" फिर दूसरी लडकी भी उसके पीछे-पीछे भीतर भाग गई।

कुछ देर बाद टैरीलीन की पैण्ट और बुश्शर्ट डाटे श्यामू (अब चौधरी श्यामसिह) हवेली मे से निकला। बारह वर्ष बाद माधव को पहचानने में थोड़ा समय लगा। और जब पहचान लिया तो बोला—"हलो, माधव बाबू हैं! आइए, आइए!" कहकर श्यामू ने हाथ मिलाने के लिए पजा माधव की ओर बढा दिया। माधव ने भी हाथ वढाया; लेकिन श्यामू का ठण्डा हाथ सिर्फ माधव के हाथ को छूकर पीछे हट गया। ऊँचे स्टैण्डर्ड मे हाथ

इसी तरह मिलाए जाते हैं। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो रहा था!

श्यामू माधव को ड्राइंग-रूम में ले गया। दोनो सोफे पर बैठे तो माधव ने कहा, "भई श्यामू! तूने तो सारा रंग-ढंग ही बदल दिया?"

"आजकल बिना रग-ढग बदले कहाँ गुज़ारा है। सब बातें ज़माने के साथ चलती हैं। अब बिना 'शो' के कोई काम नही बनता।"

और इसी तरह हल्की-फुल्की ऊपर की बातचीत चलती रही। माधव ने महसूस किया कि श्यामू अब उसके साथ गुल्ली-डण्डा खेलने वाला और पेडो पर चढने वाला श्यामू नही है—अब वह चौधरी श्यामसिह हो गया है।

इसी वीच नौकर उधर से गुज़रा तो श्यामू ने उसे दो-चार हिदायतें हाकिमाना लहजे मे दी। फिर सहसा माधव से पूछा—"मावव बाबू! जो चाय पीना चाहो तो बनवाऊँ?"

माधव को बात बडोभारो-सी लगो कि उन दिनों हाथ से बर्फी-पेडा छीनकर खा जाने वाला श्यामू पूछ रहा है चाय पीना हो तो बनवाऊँ (!)।

बरबस माधव ने कह दिया—"नही! मैं अभी पीकर आया हूँ।" हालाँकि उसे भूख लग रही थी। लेकिन नई सभ्यता मे किसी को बेमतलब चाय पिलाना हिमाकत से ज्यादा और कुछ नही है। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो रहा है!

माधव धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगा कि जैसे वह

किसी अजनबी से बाते क रहा है। वह उठकर चलने ही वाला था कि वह रिक्शे वाला चपरासी दरवाज़े का पर्दा हटाकर कमरे के भीतर झाँका।

"क्या है ?" अफसराना आवाज़ मे श्यामू ने पूछा।

"तहसील से जमाबन्दी के कागज़ लाया हूँ। इन पर आपके दस्तखत होने है।" चपरासी ने नम्रता से कहा।

"अच्छा! बाहर बैठो, अभी देखेगे।"

श्यामू ने तभी अपनी डायरी निकाली और माधव से कहा—"यार! अपना पता तो लिखवा दो। शायद हमे कभी कोई काम ही पड जाए!"

माधव मुस्कुराकर बोला—"काम पडने पर तो आओगे ही, कभी बिना काम भी मिलने आ जाया करो।"

श्यामू ने व्यग को समझकर झेंप-सी उतारी, "नही-नही, यह बात नही है। ज़रूर आऊँगा। क्या बताऊँ मुझे समय ही नही मिलता। अच्छा ज़रा इस चपरासी की बात और सुन लूं क्या कहता है।"

"मैं भी अब चल रहा हूँ।" कहकर माधव भी श्यामू के साथ ही उठ खडा हुआ। दोनो बाहर आए।

चपरासी ने आगे बढ़कर कागज़ श्यामू के हाथ मे दिए और माधव को पहचानकर नमस्ते की। कागज़ो को देख-भालकर जब श्यामू ने दस्तखत करके चपरासी को लौटाए, तो चपरासी मुस्कराता हुआ बोला—"बाबू जी, आपने मुझे पहचाना नही, मैं बुन्दू हूँ। मैंने तो आपको गोद खिलाया है। बडे चौधरी खुदा उन्हे जन्नत

थे, मेरी बडी परिवरिश करते थे। मेरा तबादला बरेली को हो गया था, तब आप छोटे थे। खुदा जानता है इन बीस बरसो में मै बडे चौधरी को बराबर याद करता रहा।"

और बुन्दू इस आशा से श्यामू के मुंह की ओर देखने लगा कि श्यामू उसे पहचानकर कहेगा, 'अरे बुन्दू मियां तुम हो! अरे भाई बडे दिनो मे मिले, इतने दिन कहाँ रहे? ..' और वह श्यामू मे भी बडे चौधरी की आत्मीयता की झलक पा सकेगा। बडे चौधरी की प्यार-मुहब्बत उसके मन को उस समय आप्यायित कर रही थी।

मगर ऐसा कुछ नही हुआ। बडे आदमियो के लहजे में श्यामू ने कहा—"अच्छा!" और बस।

लेकिन बुन्दू के मन से शायद पुराने स्नेह की डोर टूटना ही न चाहती थी। उसने फिर श्यामू से कहा—"बाबू जी! बहुत देर से प्यास लगी है, थोडा पानी मँगवा दीजिए।"

बडे चौधरी प्रीतमसिंह के सामने अगर बुन्दू ने पानी माँगा होता, तो वह हवेली से उसके लिए रोटियाँ, गुड और छाछ मँगाकर कहते—"बुन्दू, तू तो सुबह ही तहसील से चला होगा। हारा-थका आया है, ले रोटी खाले। खाली पेट पानी नही पाते हैं।"

मगर श्यामू ने कहा—"पानी?" जैसे बुन्दू ने पानी माँगकर उसकी बेइज्जती कर दी हो। फिर दूसरे ही क्षण सामने की तरफ हाथ से इशारा करते हुए बोला—"वह

सामने नल लगा है, जाकर पी लो।"

बुन्दू ने नल की ओर देखा और सुस्त कदमो से उधर बढने लगा। नल के पानी का स्वाद पीने से पहले ही उसके लिए शायद फीका हो गया था।

माधव प्रसाद और श्यामू हवेली के फाटक की तरफ धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। श्यामू बोला—"देखा आपने कैसी बाते बना रहा था यह? चाहता है रुपया-धेली ऐंठ ले जाऊँ। मुझे इन बातो से सख्त नफरत है। ये लोग सरकार से इसी काम की तनखाह पाते है, मगर फिर भी लोगो को तग करते है।" माधव ने श्यामू के चेहरे की ओर देखा और मुस्कुराकर रह गया।

भोला बुन्दू शायद अब भी ऊँचे स्टैण्डर्ड के तत्त्व को नही समझा था। नल पर से पानी पीकर लौटा तो फिर श्यामू से कहने लगा—"चौधरी! अब तो दिन छिप गया है। तहसील लौटने का वक्त नही रहा। अब तो सुबह ही जाऊँगा। एक खाट मँगवा दें तो यही पडा रहूँगा। बडे चौधरी के वक्तो मे तो मैं कई-कई दिन घर ही नही जाता था। वे इस नीम की जड़ मे मेरी चारपाई डलवा देते थे।"

अब तो चौधरी श्यामसिह का पारा चढ गया। वे गरजकर बोले—'तुमने क्या इसे धर्मशाला समझ लिया है? यहाँ कोई जगह नही है। अपना रास्ता लो।"

आखिर नई तहज़ीब ने इन्सानियत के मुँह पर एक करारा तमाचा मार ही दिया। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो

रहा है।

बुन्दू तेज़ कदमों से हवेली के अहाते से बाहर आ गया। मगर उसकी नज़र हवेली के उन पुराने बुर्जों पर अटक गई जो प्रीतमसिंह ने बनवाए थे। उसे लगा मानो प्रीतम-सिंह की आत्मा उन बुर्जों पर मँडरा रही है।

माधव के मन पर सारी स्थिति एक नक्शे की तरह अंकित हो गई। गरीब बुन्दू के प्रति उसके हृदय मे सहानुभूति उमड़ पडी। हवेली के अहाते से बाहर आकर माधव ने बुन्दू की पीठ पर हाथ रखा; बोला—"बुन्दू मियाँ! आओ आज मेरे यहाँ मेहमान रहना।"

बुन्दू की आँखें गीली हो गईं। उसने भर्राये स्वर में कहा—"शुक्रिया बाबू जी, लेकिन अब तो मैं चलूंगा ही। मन बुझ गया।"

"नही भाई, अब रात मे कहाँ जाओगे? आओ!" और यह कहता हुआ माधव, बुन्दू का हाथ पकड़कर उसे अपने घर की ओर ले चला। घर पहुँचकर उसे खाना खिलाया, और सोने के लिए चारपाई दी। बुन्दू का कुम्हलाया दिल आश्वस्त हुआ। अपने अपरिचित मेज़बान के प्रति उसका दिल कृतज्ञता से भर गया। वह बोला—"बाबू जी! मैं तो अनपढ आदमी हूँ। आप पढे-लिखे हो, जो बुरा न मानो तो एक बात कहूँ?"

"हाँ, कहो!" माधव ने उत्तर दिया। माधव देख रहा था कि बुन्दू के मन पर श्यामू के व्यवहार की प्रतिक्रिया हुई है और वह इसी सम्बन्ध मे कुछ कहकर अपना जी

चाय पिलाओ, दावतें दो। बाहरी आडम्बर और 'शं
करके दूसरों पर अपना रौब डालो और काम निकालो
इस मजहब के अनुसार दया, प्रेम, सहानुभूति, बेमतलब व
वाते है। धन इस मज़हब का सर्वोच्च देवता है। लक्ष्म
का आराधन ही इस मजहब के लोगो का परम लक्ष
होता है और दूसरो को मूर्ख बनाकर अपना काम निका
लना इसके पुजारियो की नीति होती है।

कदाचित् इस हवा के रुख को लक्ष्य करके ही स्वर्गीय
मौलाना अबुल कलाम आजाद कहा करते थे—"आज
इन्सानियत तहज़ीब का दरवाजा खटखटा रही हैं। हमें
देखना है कि कही ऐसा न हो कि इन्सानियत भूखो मरकर
दम तोड़ दे।"

इसी सन्दर्भ मे डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है—"आज
ससार मे जितनी फूट है और जितनी भीषण बुराइयो से
वह पीडित है, उतना पहले कभी नही था। आधुनिक
सभ्यता जिसकी विशेषताएँ है—वैज्ञानिक स्वभाव, जीवन
के प्रति पार्थिव तथा धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण—ससार-भर
मे सदियो पुराने रीति-रिवाजो को उखाड फेंक रही है
और सब जगह अशान्ति और विक्षोभ उत्पन्न कर रही
है। नया ससार आवश्यकताओ, आवेगो, महत्वाकाक्षाओ,
और क्रियाकलापो का ऐसा गड़बडझाला बनकर नही रह
सकता जिस पर आत्मा का कोई निर्देशन या नियन्त्रण
न हो।"

अधिक गहरे विवेचन मे न जाकर हम व्यावहारिक

बात पर आते है। ऊँचे स्टैण्डर्ड से रहना कोई बुरी बात नही है, बशर्ते कि हम इस ऊँचे स्टैण्डर्ड का महल इन्सा-नियत की कब्र पर खडा न करे।

अगर आपके पास 'कार' है तो यह सौभाग्य की बात है परन्तु कार मे बैठकर आप पैदल चलने वालो को हीन दृष्टि से मत देखिए।

यदि आपके पास शानदार कोठी है तो झोपड़ी मे रहने वाले अपने ग़रीब पडौसी को घटिया मत समझिए।

अगर आपके पास ऊँचा पद और शक्ति है तो अपने अधीनों को गुलाम मत मानिए।

यदि आपके पास विपुल धन है, ऐश्वर्य है तो किसी निर्धन का अनादर मत कीजिए।

अन्यथा आप पर यही कहावत चरितार्थ होगी—

बड़े हुए तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नही फल लागें अति दूर।।

नीतिकारो का कथन है कि [जिस तरह फलो से लदा आम का पेड झुक जाता है, इसी तरह ऐश्वर्य पाकर मनुष्य को भी नम्र और समाज के लिए उपयोगी बनना चाहिए।] ~~~ 22/8/73

वस्तुत ऐश्वर्य और सम्पन्नता की चकाचौंध मे हमे ईमानदारी और चरित्र को नही भूल जाना चाहिए। इस सिलसिले मे एक सच्ची घटना सुनिए :—

बात बम्बई की है। एक सज्जन जब 'पार्किग' से अपनी कार निकाल रहे थे तो उनसे पीछे खड़ी किसी

हल्का करना चाहता है।

बुन्दू कहने लगा, "साहब! हमारे बुजुर्ग एक-एक बात लाख-लाख रुपये की कह गए हैं। किसी ने कहा है कि—

हंसा थे सो उड़ गए कागा भए दिवान
जाउ विप्र घर आपने सिंह किसके जजमान॥

यो किस्सा इस तरह है कि एक जगल मे एक शेर रहता था। शेर तो जगल का राजा होता है। उसने अपना वज़ीर एक हस बना रखा था। हस बडा सीधा, सच्चा और दयावान् पछी होता है। वह हमेशा शेर को अच्छे काम करने की सलाह देता था। एक दिन एक गरीब ब्राह्मण उस जगल मे पहुँच गया। हस को उसकी गरीबी पर दया आई। उसने अपने राजा शेर से कहकर ब्राह्मण को जंगल के फल-फूल दिलवाए और बहुत-सा धन भी दिलवाया हस ने शेर से कहा-गरीबो पर दया करनी चाहिए। शेर ने अपने वज़ीर की बात मान ली। ब्राह्मण देवता हस को,सज्जनता पर बडे खुश हुए और शेर को आशीर्वाद दिया। कुछ दिनो बाद हस उस जगल से चला गया तो शेर ने वजीर की जगह एक कौआ रख लिया। अब आप जानो, कौआ तो बडा मक्कार होता है। वह शेर को भी मक्कारी की सलाह दिया करता था। कुछ दिन बाद, ब्राह्मण देवता को लडकी की शादी के लिए धन की ज़रूरत पड़ी तो वह अपने जजमान शेर के पास चल दिये। कौए ने उन्हे आता देखा तो शेर से बोला—"हज़ूर शिकार आ रहा है, तंय्यार हो जाएं।" शेर मुस्तैद होकर

बैठ गया। मगर जब उसने ब्राह्मण देवता को देखा तो सहम गया। हंस की नसीहत का कुछ असर शेर के दिल मे बाकी था। सो वह ब्राह्मण से बोला—"महाराज!

हंसा थे सो उड़ गए कागा भए दिवान।
जाउ विप्र घर आपने सिंह किसके जजमान॥

उसने ब्राह्मण से कहा कि हस तो उड़ गया, आजकल मेरा वज़ीर कौआ है। सो महाराज, अपने घर जाओ। शेर किसका जजमान होता है।"

सो बाबू जी! यही बात यहाँ हुई। चौधरी प्रीतम-सिह हंस आदमी था। और आपने उसके लडके को देख ही लिया, एक पीढी मे ही ज़माना कितना बदल गया है। गाँवो में तो लोग राह चलते मुसाफिर तक की मेहमान-नवाज़ी करते थे। मगर अब नई हवा चल पडी है, सब-कुछ बदल गया।"

उपर्युक्त कथा कोई काल्पनिक रूपक नही है, बल्कि एक सच्ची घटना पर आधारित है। इसके उद्धरण से लेखक का तात्पर्य ऊँचे स्टैण्डर्ड को कोसना या नई तहज़ीब के खिलाफ कोई जिहाद बोलना नही है। मतलब सिर्फ इतना है कि आज जो हमारे समाज मे ऊँचे स्टैण्डर्ड और नई सभ्यता की हवा चल रही है, उसमे काफी खोखला-पन है। और इस खोखलेपन से बचने की ज़रूरत है। इस ऊँचे स्टैण्डर्ड के मजहब मे यह झलक मिलती है कि अगर किसी से कोई स्वार्थ-साधन नही होता है, तो उससे बात नही करनी चाहिये। जिससे गरज पूरी होती हो उसे

चाय पिलाओ, दावतें दो। बाहरी आडम्बर और 'शो' करके दूसरो पर अपना रौब डालो और काम निकालो। इस मजहब के अनुसार दया, प्रेम, सहानुभूति, बेमतलब की बातें हैं। धन इस मज़हब का सर्वोच्च देवता है। लक्ष्मी का आराधन ही इस मजहब के लोगो का परम लक्ष्य होता है और दूसरो को मूर्ख बनाकर अपना काम निकालना इसके पुजारियो की नीति होती है।

कदाचित् इस हवा के रुख़ को लक्ष्य करके ही स्वर्गीय मौलाना अबुल कलाम आजाद कहा करते थे—"आज इन्सानियत तहज़ीब का दरवाजा खटखटा रही है। हमे देखना है कि कही ऐसा न हो कि इन्सानियत भूखो मरकर दम तोड़ दे।"

इसी सन्दर्भ मे डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है—"आज ससार मे जितनी फूट है और जितनी भीषण बुराइयो से वह पीडित है, उतना पहले कभी नही था। आधुनिक सभ्यता जिसकी विशेषताएँ हैं—वैज्ञानिक स्वभाव, जीवन के प्रति पार्थिव तथा धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण—ससार-भर मे सदियो पुराने रीति-रिवाजो को उखाड फेंक रही है और सब जगह अशान्ति और विक्षोभ उत्पन्न कर रही है। नया ससार आवश्यकताओ, आवेगो, महत्वाकाक्षाओं, और क्रियाकलापो का ऐसा गड़बडझाला बनकर नही रह सकता जिस पर आत्मा का कोई निर्देशन या नियन्त्रण न हो।"

अधिक गहरे विवेचन मे न जाकर हम व्यावहारिक

बात पर आते है। ऊँचे स्टैण्डर्ड से रहना कोई बुरी बात नही है, बशर्ते कि हम इस ऊँचे स्टैण्डर्ड का महल इन्सानियत की कब्र पर खड़ा न करे।

अगर आपके पास 'कार' है तो यह सौभाग्य की बात है परन्तु कार मे बैठकर आप पैदल चलने वालो को हीन दृष्टि से मत देखिए।

यदि आपके पास शानदार कोठी है तो झोपडी मे रहने वाले अपने गरीब पडौसी को घटिया मत समझिए।

अगर आपके पास ऊँचा पद और शक्ति है तो अपने अधीनो को गुलाम मत मानिए।

यदि आपके पास विपुल धन है, ऐश्वर्य है तो किसी निर्धन का अनादर मत कीजिए।

अन्यथा आप पर यही कहावत चरितार्थ होगी—

बड़े हुए तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं फल लागें अति दूर।।

नीतिकारो का कथन है कि जिस तरह फलो से लदा आम का पेड़ झुक जाता है, इसी तरह ऐश्वर्य पाकर मनुष्य को भी नम्र और समाज के लिए उपयोगी बनना चाहिए।

वस्तुत ऐश्वर्य और सम्पन्नता की चकाचौध मे हमे ईमानदारी और चरित्र को नही भूल जाना चाहिए। इस सिलसिले मे एक सच्ची घटना सुनिए .—

बात बम्बई की है। एक सज्जन जब 'पार्किग' से अपनी कार निकाल रहे थे तो उनसे पीछे खडी किसी

भी अलीगढ-कट का पाजामा, लखनऊ का बेलदार कुर्ता और उस पर एक ऊनी वास्कट पहनते थे। सबसे हँसकर बात करते। उनके एक बार के सम्पर्क से ही व्यक्ति बडी आत्मीयता का अनुभव करता था। नवाब साहब की दिली मशा यह रहती थी कि वे लोगों के ज्यादा-से-ज्यादा काम आ सकें। वे अपनी भलमनसाहत के लिए पूरे इलाके मे मशहूर थे।

बाद को वे स्पेशल ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी बना दिए गए थे और इस पद से उन्होने हमेशा इन्साफ करने की कोशिश की। हालाँकि नवाब साहब पढे-लिखे ज्यादा न थे, लेकिन ज़हन बहुत अच्छा था। बहुत जल्दी मामले की तह पर पहुँच जाते थे। वे मुकद्दमो का फैसला एक अजीब अन्दाज़ से करते थे। उनके इन्साफ का भी लोगो पर सिक्का था।

एक बार उनके इजलास मे पुलिस के एक दीवान जी चोरी का एक मुकद्दमा लाए। दीवान जी की उम्र लगभग पचास के रही होगी, आबनूसी रग, दोहरा भारी शरीर, नोकदार मूंछे, सूरत से सोलहो आने पुलिसपन टपकता था। साथ मे मुलज़िम जो लगभग ३०-३२ साल का जवान था—इकहरा बदन, सूरत से गरीबी टपक रही थी; उसके हाथ मे एक लोटा था। नवाब साहब ने दीवान-जी की ओर मुखातिब होकर पूछा—"कहिए दीवान जी! क्या मामला है?"

"हज़ूर! मुलज़िम मय माल के पकड लाया हूँ।"

दीवान ने गर्व से कहा।

"क्या किया था इसने ?" नवाब साहब ने बगौर मुलज़िम की तरफ देखा।

"हज़ूर, यह लोटा उठाकर भागा था।"

"अच्छाऽऽ !! कहाँ से ?"

"पुलिस चौकी से सरकार !"

"अच्छा तो फिर इसे किसने पकडा ?"

"गुलाम ने सरकार !"

नवाब साहब यह सुनकर कुछ देर तक सोच-विचार करते रहे। फिर दीवान जी से पूछा, "यह किस वक़्त का वाकया है ! पूरा हाल बताओ।"

"सरकार कोई रात के नौ बजे का वक्त था। लोटा मेरी चारपाई के पास ही स्टूल पर रखा था। मैं दूसरी तरफ मुंह किए लेटा हुआ था। खटका होने पर जब मैंने मुंह फेरकर देखा यह लोटा लेकर भाग चुका था। तब मैं इसके पीछे भागा और पकड लिया।"

"तुमने इसे कितनी दूर जाकर पकड़ा ?"

"यही सरकार ! कोई ढाई-तीन सौ गज़ पर।"

"अच्छा, क्या तुम इसे अब भी भागकर पकड सकते हो ?" इस सवाल पर दीवान जी चकराए और कुछ खामोश-से हो गए। नवाब साहब ने फिर कहा—"कहिए दीवान जी, चुप क्यो हो गए ?"

फिर तो दीवान जी को अपनी बात साधने के लिए कहना पडा—"हाँ सरकार ! गुलाम इसे अब भी पकड़

दूसरे की कार मे टक्कर लग गई जिसके फलस्वरूप बत्ती का शीशा टूट गया और मडगार्ड पिचक गया। उन सज्जन को अपनी इस असावधानी पर बड़ा खेद हुआ। उन्होने कार के मालिक की तलाश की ताकि अपनी गलती की क्षमा मांग सके और मरम्मत का मुआवज़ा उन्हे दे दे। लेकिन उस कार के मालिक का कोई पता उस समय न चला। उन्हे एक पर्चा लिखकर कार मे डाल दिया जिसमे उन्होने टक्कर लग जाने की क्षमायाचना की और अपने आफिस का पता लिख दिया था। साथ ही यह भी लिख दिया था कि उसकी मरम्मत मे जो कुछ लगे, वह उनके आफिस मे आकर उनसे ले ले।

कई दिन बीत गए, और उन्हे वह घटना विस्मृत-सी हो गई। कोई व्यक्ति उनके पास नही आया। लगभग एक सप्ताह वाद एक वृद्ध पारसो सज्जन उन्हे पूछते हुए कार्यालय में पहुँचे और उनके सामने वह पर्चा रखा। उन्होनें क्षमा मांगते हुए पूछा कि मरम्मत के कितने पैसे देने है? इस पर वह वृद्ध पारसी महोदय बोले—"अरे नही साहब, मैं आपसे कुछ लेने नही आया हूँ। मैं तो आपके दर्शन करने आया हूँ। पर्चा पढकर मैंने सोचा कि आज के ज़माने मे यह कौन सज्जन है जो इतनी ईमानदारी से पर्चा और पता लिखकर छोड गए है। वर्ना वह चुपचाप कार लेकर खिसक भी सकते थे। मैं आपकी सच्चाई और ईमानदारी के लिए पुरस्कार देने आया हूँ।" और यह कहकर वृद्ध पारसी ने उन्हे गाधी जी की एक

सुन्दर मूर्ति भेट की।[1]

अब पाठक स्वयं ही उस ईमानदार सज्जन के मनोगत भावो का अनुमान लगा सकते हैं कि इस सच्चाई और ईमानदारी के पुरस्कार से उनका हृदय कितना आप्यायित हुआ होगा। ऊँचे स्टैण्डर्ड का व्यक्ति होते हुए भी उसने सच्चाई को जीवन मे प्राथमिकता दे रखी थी।

○

परोपयोगी कैसे बनें

दूसरो के काम आना बहुत बड़ा मानवीय गुण है। इस विषय के विवेचन मे जाने से पहले एक और कथानक सुनिए—यह कथानक भी तथ्यो पर आधारित है। कथा नवाब ज़फरुल्ला खाँ की है जो मन की गहराइयो को छूती है।

"बात स्वराज्य मिलने से पहले की है। नवाब ज़फरुल्ला खाँ दस गाँव के सालिम इलाके के ज़मीदार थे। शराफत, हमदर्दी, सच्चाई और परदुःख-कातरता जैसे उनमे कूट-कूटकर भरी थी। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नवाब के खिताब से सुशोभित किया था। इतने बडे आदमी होकर भी स्वभाव मे बच्चो की-सी सरलता थी, घमण्ड छू तक न गया था। उनका व्यक्तित्व भी आकर्षक था। इकहरा बदन, दर्म्याना कद, गोरा चिट्टा रंग, पानीदार आँखे, तराशी हुई मुख्तसिर-सी सफेद दाढी। जाडो मे

१ यह घटना बम्बई के एक मासिक पत्र मे छपी थी।

सकता है।"

नवाब साहब ने मुलज़िम से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"छिद्दासिंह है हजूर ! मैं तो बेकसूर हूँ मालिक !"

"अच्छा तो जो सच्ची बात हो वह बताओ, डरो मत।"

"हजूर ! न तो मैं चौकी की तरफ गया न मैंने लोटा उठाया। मैं तो रात अपने घर था। अभी सुबह ही दो सिपाहियो ने मुझे रास्ते से पकड लिया।" नवाब साहब ने कहा, "अच्छा तो दीवान जी सुनो ! अगर तुमने अब छिद्दासिंह को भागकर पकड़ लिया तो मैं इसे सख्त-से-सख्त सजा दूंगा, और जो तुम न पकड़ सके तो याद रक्खो तुम्हे बरखास्त कराए बिना न छोड़ूंगा।" इसके बाद नवाब साहब दोनो को कोठी के बाहर ले गए। एक खाट पर दीवान जी को लिटाया गया, स्टूल पर लोटा रखा गया और छिद्दासिंह को उसके पास खडा किया गया। नवाब छिद्दा से बोले, "देखो ! अगर तुम दीवान जी की पकड़ मे न आए तो मय लोटे के अपने घर भाग जाना फिर मेरे इजलास मे आने की ज़रूरत नही।"

नवाब साहब ने दोनो को सावधान करके एक, दो, तीन कहा और छिद्दा लोटा लेकर भागा। दीवान जी खाट से उठकर उसके पीछे दौडे। मगर कहाँ !! क्षण-क्षण दोनो का अन्तर बढता गया। छिद्दासिंह कहाँ-का-कहाँ पहुँचा और दीवान जी कोई सौ गज़ दौडे कि बेदम होकर

गिर पडे। दो आदमी उन्हे वहाँ से उठाकर लाए। नवाब साहब की आँखें गुस्से से लाल हो गईं। दीवान जी से बोले – "तुम अव्वल दर्जे के झूठे हो। गरीबो को सताना ही तुम्हारा काम रह गया है। मैं तुम्हे बरखास्त कराए बिना न छोड़ूँगा।" अब तो दीवान जी ने पैर पकड लिए, गिडगिडाकर कहा "हजूर माई-बाप है! मैं बालबच्चोदार आदमी हूँ, तबाह हो जाऊँगा सरकार! इस बार माफ कर दीजिए।" नवाब साहब को कुछ रहम आ गया। बोले, "जाओ इस बार तुम्हे छोडता ज़रूर हूँ लेकिन दीवानी से तुम्हे कान्सटेबिली पर ज़रूर तनज्जुल होना पडेगा। हालाँकि सज़ा बहुत कम है लेकिन सबक लो आगे से किसी गरीब को कभी न सताना।"

ऐसा होता था नवाब साहब का इन्साफ! दूध-का-दूध और पानी-का-पानी।

लोग अपनी हर गरज के लिए नवाब साहब का दरवाज़ा खटखटाते और नवाब साहब यथाशक्ति हरेक की गरज़ पूरी करते थे। उस पूरे इलाके मे हर आला-अदना के यहाँ शादियो मे नवाब साहब के यहाँ से ही सारा सामान आता था। जब कोई सामान लेने की गरज़ से नवाब साहब के पास पहुँचता तो वह उससे प्रेमपूर्वक पूछते— "कहो भाई जान! कैसे आए?"

आगन्तुक कहता—"आपकी लडकी की शादी है, अमुक तारीख की।"

"अच्छा!" नवाब साहब मुस्कुराकर कहते, "तो

मेरे लिए काम बताओ।"

"आपको आना होगा।"

"लेकिन भाई, तुम जानते ही हो खाना तो मैं किसी के यहाँ खाता नही, रसद भेज देना।"

"लेकिन, आपकी मौजूदगी तो जरूरी है।"

"अच्छा तो मैं जरूर हाजिर हो जाऊँगा।"

"और सामान भी चाहिएगा।"

"जरूर, ज़रूर, वह तो चाहिए ही।"

फिर नवाव साहव मुन्शी को पुकारकर कहते, "मुन्शी जी! जरा देखना उस तारीख मे किसी और के यहाँ तो सामान नहीं जाना है?"

मुन्शी जी रजिस्टर देखकर बताते, "नही हजूर!"

"तो फिर इनका सामान लिख लो।"

आगन्तुक मुन्शी जी को तकियो, कालीनो, दरियो, चाँदनियो और बर्तनो की फहरिस्त लिखवा देता और फिर कहता—"घोडी का जेवर भी तो चाहिए।" नवाव साहव के पास घोडी का ठोस सोने-चाँदी का ज़ेवर था जिसका वजन लगभग १०-१२ सेर था।

"अच्छा," नवाब साहब कहते—'तो ज़ेवर तुम अपनी तहवील मे ही ले जाओ। सामान के लिए एक दिन पहले ताँगा भेज देना और अगर तुम्हारे पास ताँगे का सुभीता न हो तो मैं अपने ताँगे मे भिजवा दूंगा।"

"नही-नही," आगन्तुक कहता, "ताँगा मैं ही भेज दूंगा।"

"अच्छा देखो, ज़ेवर के साथ इत्र-दान भी लेते जाना लेकिन उसमे इत्र तुम मत डालना, मैंने उसमे लखनऊ के असगर अली के यहाँ की एक शीशी रख दी है। बा-ख़ुदा बहुत उम्दा इत्र है, जिसके भी लग जाएगा एक महीने तक महकता रहेगा।" नवाब साहब का इत्रदान भी ठोस सोने-चाँदी का गगा-जमनी बना हुआ था।

कभी-कभी नवाब साहब के पास ऐसे शख्स भी सामान माँगने आ जाते थे जिन्हे नवाब नही पहचानते थे। लेकिन नवाब उनसे यह बात जाहिर नही होने देते। चुपचाप कोठी के पीछे जाते। जनानखाने से भिश्ती पानी भरकर लौट रहा होता तो वे आवाज लगाते, "मियाँ भिश्ते! ज़रा इधर तो आना।"

भिश्ती नजदीक आकर सलाम करता। नवाब कहते, "देखना कोठी के बरामदे मे जो साहब बैठे हैं, तुम उन्हे पहचानते हो? क्या वह हमारे यहाँ आते-जाते है?"

भिश्ती लौटकर जवाब देता, "हजूर! मैंने तो उन्हे नही पहचाना, पूछे लेता हूँ सरकार!"

"मियाँ, क्या अहमकपने की बात करते हो!" नवाब नाराज़ होकर कहते, "पूछने से उनका दिल टूट जायेगा, तौहीन समझेंगे—कहेगे आँखो पर दौलत ने चर्बी चढा दी है, हमे पहचानते भी नही···अच्छा जाओ तुम अपना काम देखो।"

नवाब साहब फिर एकाध बार किसी दूसरे से उनकी शनाख्त की कोशिश करते। शनाख्त हो जाती तब ठीक, और न होती तब भी वे उन्हे सामान दे ही दिया करते।

और यह नवाब साहब की नीयत का फल था या उनका इकबाल कि लोग प्राय: ईमानदारी से उन्हे सामान वापस दे जाते थे।

एक बार पास के कस्बे फरीदपुर के लाला दीनदयाल नवाब साहब से शादी का सामान और घोडी का ज़ेवर माँगकर ले गये। लाला दीनदयाल और नवाब साहब की अच्छी मुलाकात थी। यूं लाला दीनदयाल अच्छी हैसियत के आदमी समझे जाते थे; लेकिन उन दिनो उनकी माली हालत बहुत कमजोर थी और लडके की शादी करनी ज़रूरी थी; रुपया पास मे न था। बात कुछ ऐसी थी कि किसी से कुछ कह-सुन भी न सकते थे। उन्होने एक तरकीब सोची कि नवाब साहब की घोडी का जेवर चार हज़ार मे गिरवी रख देगे और फिर बहू जो कुछ गहना-ज़ेवर लाएगी उसे रेहन करके घोडी का ज़ेवर छुडाकर नवाब साहब को वापस कर देगे। और उन्होने किया भी ऐसा ही। हापुड के रईस बाँके बनवारी के यहाँ चार हज़ार मे जेवर गिरवी रख दिया। शादी हो गई, बहू घर आ गई। लाला जी एकाध हफ़्ता रुककर किसी तरकीब से बहू का ज़ेवर लेना चाहते थे इसलिए उन्होने नवाब का सामान तो भेज दिया और जेवर के लिए चिट्ठी लिख दी कि दो-चार दिन मे ख़ुद ही लेकर आऊँगा।

इसी दरम्यान नवाब के पास एक और सज्जन शादी का सामान और घोडी का ज़ेवर माँगने पहुँचे। दूसरे सामान के लिए तो नवाब साहब ने हामी भर ली लेकिन

ज़ेवर के लिए कहा—"भाई जान ! ज़ेवर तो दीनदयाल के यहाँ गया हुआ है। अभी वापस नही आया, दो-चार दिन बाद ही मिल सकेगा।"

"क्या ज़ेवर दीनदयाल के यहाँ हैं ?" उन सज्जन ने कुछ रहस्यमय ढग से पूछा।

"हाँ।" नवाब ने सरल स्वभाव से कहा।

"लेकिन दीनदयाल के लडके की शादी मे तो मैं भी गया था। उन्होंने तो किसी घोड़ी पर ज़ेवर सजाया नहीं था।"

"वाह साहब ! ऐसा कैसे हो सकता है ? आप भूल रहे हैं, आपकी नजर घोडी पर ही नही पडी होगी।"

"अजी नवाब साहब ! मैं सच कह रहा हूँ घोडी का जेवर बारात मे गया ही नही। और असल बात तो यह है कि दीनदयाल ने आपका ज़ेवर हापुड में बाँके बनवारी के यहाँ चार हज़ार मे रहन रख दिया है।"

नवाब साहब तुनककर बोले, "लाहौल विला क़ूवत ! आप दूसरो की टोपी उछालते हैं। म्याँ, आप कौन-से दीनदयाल का जिक्र कर रहे हैं ?"

"फरीदपुर वाले दीनदयाल का।"

"म्याँ, कमाल कर दिया। भई, मेरा जेवर तो मुरादनगर वाले दीनदयाल सानी के यहाँ गया है। भई, आप भी अजब आदमी है। अच्छा जाइए आप ज़ेवर चार दिन बाद मँगवा लीजिएगा। इस तरह किसी पर तोहमत लगाना अच्छा नही होता।"

"हज़ूर, बैंक मे जमाशुदा रकम।"

"तो बाँके बनवारी का इतना रुपया बैंक मे जमा है?"

"जी हाँ सरकार!"

"लेकिन इससे क्या फायदा?"

"बैंक उन्हे रुपए का बहुत अच्छा सूद देता है हजूर!"

"भई मुन्शी जी, बैंक सूद ही तो देता है 'दुआ' तो नही देता! सूद से दुआ बहुत बडी चीज़ है। मुन्शी जी, काश तुम इस बात को समझ सकते!"

चार दिन बाद लाला दीनदयाल घोडी का ज़ेवर और दो हजार रुपए लेकर नवाब साहब के पास आए। उन्होने किसी प्रकार ये दो हज़ार रुपए जुटाए थे। काफी जद्दोजहद हुई लेकिन नवाब साहब ने किसी तरह भी रुपए मजूर न किए; बोले "भाई जान! यह तो तुम दुलहन की हकतल्फी कर रहे हो, यह रुपए तुम मेरी तरफ से उसी के हाथ पर रख देना और मेरी दुआ कहना, आखिर वह मेरे भी तो बेटे की बहू है।" और लाला दीनदयाल गीली आँखो से नवाब की शराफत का बोझ लिये वापस आ गए। ऐसे थे हमारे नवाब ज़फरुल्ला खाँ।

जमाने ने करवट बदली, ज़मीदारी खात्मे का कानून आया। गाँव छिन गए। नवाब खुद काश्त की जमीन तक न बचा सके, वह उनके नौकर-चाकर और हल जोतने वालो ने अपने नाम मौरूसी करा ली। कहते हैं मुसीबत अकेली नही आती··। ऐसे वक्त का कर्ज़दारो ने भी फायदा उठाया; कुछ भाग गए कुछ मुकर गए, लेकिन

नवाब साहब ने किसी पर कोई कानूनी कारंवाई नही की। आमदनी के सारे ज़रिये बन्द हो गए। जो सैकडों को रोज़ी देता था उसे अपनी रोटी की फिक्र पड गई। सख़ावत के हाथ लुञ्जे हो गए। नौकर-चाकर, मुन्शो, दीवान, और गुमाश्ते सब बिदा कर दिए गए। सिर्फ एक बावर्ची रह गया।

जिन दिनो नवाब साहब इस खराब हालत से गुजर रहे थे तभी एक दिन लखनऊ का एक इत्र-फरोश कस्बे मे नवाब साहब की कोठी का रास्ता पूछ रहा था। लोगो ने कहा, "भाई! अब वहाँ जाकर क्या लोगे? नवाब साहब अब वह नवाब नही रहे। उनकी हालत तो बहुत कमजोर हो गई है। अब वह तुम्हारा इत्र नही खरीद सकते।"

इत्र-फरोश बोला "ख़ैर यह सब तो अल्लाह की मर्ज़ी से होता है, लेकिन मैंने नवाब साहब से बहुत मुनाफा कमाया है। उनसे बिना मिले और कुछ तोहफा दिए बिना तो नही जाऊँगा।"

इत्र-फरोश जब नवाब साहब से मिला तो वह बोले, "भाई जान! अब तो हम तुम्हारा इत्र नही खरीद सकते। मियाँ, अब वह बाते नही रही। अस्सी रुपए तोले की हिना और सौ रुपए तोले का गुलाब खरीदना अब ताकत के बाहर है। लेकिन फिर भी जब तुम आ गए हो तो कुछ दे जाओ।"

इत्र-फरोश ने दो-चार फुरैतियाँ नमूने की पेश की

नवाब साहब का ऐसा रुख देखकर वह सज्जन चुपचाप चले गए। और तभी नवाब साहब ने कहा, "मुन्शी जी ! जरा ताँगा तो जुडवाइए।"

"क्या सरकार फरीदपुर के लिए ?"

"हाँ, जरा दीनदयाल से मिल आऊँ।"

"इस काम के लिए हुजूर क्यो तकलीफ उठाते हैं, मैं ही चला जाऊँगा।"

"भई मुन्शी जी, यह काम तुम्हारे करने का नही, यह तो मुझे ही करना होगा। आप ताँगा जुडवाइए।"

और जब नवाब दीनदयाल के यहाँ पहुँचे तो लाला दीनदयाल सकपका गए। नवाब ने सरल स्वभाव से कहा—

"भाई जान ! वह घोडी का ज़ेवर मँगवा दो, कई लोग माँगने आ चुके है।"

लाला जी का मुँह उतर गया, तालू सूख गया। फिर भी उन्होने हिम्मत करके नवाब साहब से कह डाला—"नवाब साहब ! एक कसूर मुझसे हो गया है और उसके लिए मै आपके सामने शर्मिन्दा हूँ।"

"क्यो-क्यो ? क्या बात हुई ? क्या ज़ेवर चोरी हो गया ?"

"नही, मैंने उसे चार हज़ार मे गिरवी रख दिया है। नवाब साहब ! आजकल मेरे दिन कुछ खराब हैं। रुपए की तगी की वजह से मैंने ऐसा किया।"

"फिर अब आगे क्या करोगे ?" नवाब ने शान्त स्वर

में पूछा।

"आप खातिर जमा रखें, ज़ेवर आपके पास तीन-चार दिन बाद ज़रूर पहुँच जाएगा।"

"तो कही से रुपए का इन्तज़ाम हो गया है ?"

"हुआ तो नही है लेकिन लडके की बहू के जेवर रख-कर मैं यह इन्तजाम कर दूंगा।"

यह सुनकर तो नवाब साहब बिगड उठे—"म्याँ, तुफ है तुम्हारे खयाल पर ! तुम उस मासूम दुल्हन के जेवर छीनकर उसके अरमानो का गला ही घोट देना चाहते हो ? क्या समझेगी वह तुम्हारे बारे मे ? बेचारी का दिल ही टूट जाएगा। बाज आओ अपने इरादे से। अगर ऐसी ही मजबूरी थी तो तुम्हे पहले ही मुझसे कहना था। लेकिन तुमने मुझे गैर समझा। लो यह चार हज़ार रुपए और ज़ेवर छुडा लाना।' फिर नवाब साहब जरा गला साफ करके बोले, "देखो, यह रुपया मैं वापस नही लूंगा, यह मेरी तरफ से बहू की मुँहदिखाई है।"

लाला दीनदयाल की आँखो से टप-टप आँसू गिरने लगे और नवाब साहब उन्हे रुपए सौपकर वापस हो लिए। नवाब के साथ उनके मुन्शी भी गए थे। वापस होते समय बातचीत के सिलसिले मे मुन्शी जी बोले—"सर-कार का रुतबा तो 'बांके बनवारी' हापुड वालो से बहुत बडा है लेकिन उनका बैंक-बैलेंस एक लाख से ऊपर है और हजूर ने अपना सारा रुपया यूं ही बांट रखा है।"

"यह बैंक-बैलैन्स क्या बला है मुन्शी जी ?"

"हजूर, बैंक में जमाशुदा रकम।"

"तो बाँके बनवारी का इतना रुपया बैंक मे जमा है ?"

"जी हाँ सरकार!"

"लेकिन इससे क्या फायदा ?"

"बैंक उन्हे रुपए का बहुत अच्छा सूद देता है हजूर!"

"भई मुन्शी जी, बैंक सूद ही तो देता है 'दुआ' तो नही देता ! सूद से दुआ बहुत बडी चीज है। मुन्शी जी, काश तुम इस बात को समझ सकते !"

चार दिन बाद लाला दीनदयाल घोडी का जेवर और दो हजार रुपए लेकर नवाब साहब के पास आए। उन्होने किसी प्रकार ये दो हजार रुपए जुटाए थे। काफी जद्दोजहद हुई लेकिन नवाब साहब ने किसी तरह भी रुपए मंजूर न किए, बोले "भाई जान! यह तो तुम दुलहन की हकतल्फी कर रहे हो ; यह रुपए तुम मेरी तरफ से उसी के हाथ पर रख देना और मेरी दुआ कहना, आखिर वह मेरे भी तो बेटे की बहू है।" और लाला दीनदयाल गीली आँखो से नवाब की शराफत का बोझ लिये वापस आ गए। ऐसे थे हमारे नवाब जफरुल्ला खाँ।

जमाने ने करवट बदली, जमीदारी खात्मे का कानून आया। गाँव छिन गए। नवाब खुद काश्त की जमीन तक न बचा सके, वह उनके नौकर-चाकर और हल जोतने वालो ने अपने नाम मौरूसी करा ली। कहते हैं मुसीबत अकेली नही आती…। ऐसे वक्त का कर्जदारो ने भी फायदा उठाया, कुछ भाग गए कुछ मुकर गए, लेकिन

नवाब साहब ने किसी पर कोई कानूनी कार्रवाई नही की। आमदनी के सारे ज़रिये बन्द हो गए। जो सैकडों को रोजी देता था उसे अपनी रोटी की फिक्र पड गई। सखावत के हाथ लुन्जे हो गए। नौकर-चाकर, मुन्शो, दीवान, और गुमाश्ते सब बिदा कर दिए गए। सिर्फ एक बावर्ची रह गया।

जिन दिनो नवाब साहब इस खराब हालत से गुजर रहे थे तभी एक दिन लखनऊ का एक इत्र-फरोश कस्बे मे नवाब साहब की कोठी का रास्ता पूछ रहा था। लोगो ने कहा, "भाई! अब वहाँ जाकर क्या लोगे? नवाब साहब अब वह नवाब नही रहे। उनकी हालत तो बहुत कमजोर हो गई है। अब वह तुम्हारा इत्र नही खरीद सकते।"

इत्र-फरोश बोला "ख़ैर यह सब तो अल्लाह की मर्ज़ी से होता है, लेकिन मैंने नवाब साहब से बहुत मुनाफा कमाया है। उनसे बिना मिले और कुछ तोहफा दिए बिना तो नही जाऊँगा।"

इत्र-फरोश जब नवाब साहब से मिला तो वह बोले, "भाई जान! अब तो हम तुम्हारा इत्र नही खरीद सकते। मियाँ, अब वह बातें नही रही। अस्सी रुपए तोले की हिना और सौ रुपए तोले का गुलाब खरीदना अब ताकत के बाहर है। लेकिन फिर भी जब तुम आ गए हो तो कुछ दे जाओ।"

इत्र-फरोश ने दो-चार फुरैतियाँ नमूने की पेश की

किसी मजदूर का बोझ उठवाने मे उसे सहायता दे देते हैं तो उसकी मजदूरी बन जाती है। अगर आपके पास कार है और बस की प्रतीक्षा मे खडे परेशान यात्री को आप लिफ्ट दे देते है तो वह समय पर अपने मुकद्दमे की पैरवी कर लेता है। किसी गरजमन्द मिलने वाले को आप एक घण्टे के लिए अपनी साइकिल उधार दे देते है तो वह अस्पताल मे अपने रोगी से मिल आता है, उसका समय और किराया बच जाता है।

हमारे पडौस मे एक ऐसे सज्जन रहते हैं, जो साइकिल से दफ्तर जाते समय रास्ते से एक बच्चे को साइकिल पर बिठाकर उसके स्कूल छोड देते हैं। बच्चे का स्कूल उनके दफ्तर के रास्ते मे ही पडता है। वह बच्चा एक दिन बस-स्टैण्ड पर उन्हे मिल गया था, बच्चे ने अनुनय की कि वे साइकिल पर उसे स्कूल छोड दे, उन्होने बच्चे को लिफ्ट दे दिया। और अगले दिन से प्रतिदिन ही उस बच्चे को ले-जाने का उन्होने कार्यक्रम ही बना लिया। मजे की बात यह कि उन्हे यह भी पता नही कि बच्चा किसका है। किन्तु इस सहायता-कार्य मे वे एक सन्तोप का अनुभव करते हैं।

बहुत-से लोग किसी खास रोग की दवाइयाँ मुफ्त बाँटते है। धर्मशालाएँ और कुएँ बनवाने, प्याऊ लगवाने मे भी पुराने लोगो के मन मे परहित की भावना रहती थी।

अनेक सम्पन्न व्यक्ति आजकल निर्धन विद्यार्थियो को छात्रवृत्ति देकर शिक्षा मे सहयोग देते हैं। कई लोग सार्वजनिक कार्यों मे गुप्तदान देते हैं। वे अपना नाम भी

नही चाहते। निश्चय ही ऐसे लोगा के मन मे परहित-साधन के लिए सच्ची लगन होती है।

इस तरह के परहित-साधन से व्यक्ति अपने जीवन-क्रम को उदार बनाता है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना अनायास ही उसके जीवन मे उतर आती है। वह जीवन मे मिठास का अनुभव करने लगता है। उसे अपने तथाकथित दुःख हल्के लगते हैं और जीवन की मजिल आसान होती है। ⊙⊙

जीवन में गम्भीरता का स्थान

जीवन मे गम्भीरता का महत्वपूर्ण स्थान है। अपने जीवन का रूप निश्चित करने मे एव नीति-निर्माण मे किसी भी व्यक्ति को गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करना चाहिए। किन्तु कई वार लोग छोटी-छोटी वातो को लेकर अना-वश्यक रूप से गम्भीर हो उठते हैं, मूड विगाड लेते हैं और व्यर्थ की गहराइयो मे जाकर एक अनावश्यक परे-शानी मे पड जाते है।

इस प्रकार की अनावश्यक गम्भीरना से जीवन वोझिल लगने लगता है, जीवन का प्रसाद कम हो जाता है और मन मे क्लेश और क्लान्ति आ जाती है। [जीवन में रस लाने के लिए यह जरूरी होता है कि व्यक्ति ज़िन्दगी को वोझ समझकर न घसीटे।]

मान लीजिए आपका पुत्र परीक्षा मे फेल हो गया और इस वात को लेकर आप गम्भीर हो जाएँ—कही लडके को लानत-मलामत दे; उधर परीक्षा को कोसें, कोर्स तय करने वाले अधिकारियों पर अपना क्रोध उतारे; लड़के की ज़िन्दगी का एक साल वेकार हो गया इस पर

घण्टों चिन्ता करें, तो हम इसे अनावश्यक गम्भीरता ही कहेगे। क्योकि, ज़िन्दगी कभी भी किसी नाप-तोल मे बाँधकर नही खीची जा सकती। जीवन की राहो में ऊँचाई-नीचाई आना बिल्कुल स्वाभाविक होता है। ऐसे स्थानों पर उलझ जाने से बोझिलपन आ जाता है। ऐसी बातो को यथार्थ रूप मे लीजिए। कारण देखिए, लडका क्यो फेल हुआ ? उसके बुद्धिस्तर को देखते हुए, कक्षा का कोर्स उसके लिए कठिन तो नही है ? यहाँ यह दलील नही देनी चाहिए कि दूसरे लडके कैसे पास हो गए। प्रत्येक की बुद्धि और पढने की क्षमता अलग होती है। यह भी देखना चाहिए कि घर के वातावरण से उसे पढाई-लिखाई मे असुविधा तो नही हुई है ? इसी तरह और भी कारण तलाश कीजिए और उन्हे दूर कीजिए, अगले वर्ष वह जरूर अच्छे नम्बरो से पास होगा। ऐसे विषय को ज़िन्दगी का सिर-दर्द मत बनाइए।

मैं कृष्णस्वरूप के परिवार का गृह-चिकित्सक था। उनके अस्सी-वर्षीय पिता बीमार पड गए। कृष्णस्वरूप उनकी बीमारी से बेहद फिक्रमन्द और परेशान हो उठे। बड़े-बडे डाक्टर बुलाए , दौड-धूप, सेवा-सुश्रूषा मे रात-दिन एक कर दिया। रुपया पानी की तरह बहाया। किन्तु रोगी बच न सका।

जहाँ तक सेवा-सुश्रूषा और इलाज-माजरे का सम्बन्ध था उन्होने ठीक ही किया, अपना फर्ज़ निभाया। किन्तु उनके मरने पर तो कृष्णस्वरूप मानो खुद को ही मरा

हुआ समझने लगे। खाना-पीना छोड दिया, रो-रोकर घर भर दिया। रोज अपने पिता की समाधि पर जाकर वहाँ घण्टो-घण्टो खोए-खोए-से बैठे रहते।

[प्रियजन की मृत्यु पर किसी भी व्यक्ति को शोक होना स्वाभाविक है, किन्तु उस शोक को बड़ा करके सिर पर लाद लेना यथार्थ से मुंह मोड़ना है।] प्रत्येक व्यक्ति जानता है मृत्यु अवश्यम्भावी है। मृत्यु से आज तक कोई बचा है न बचेगा। इस तथ्य को जीवन मे उतारना, और यथार्थ का मर्म समझना अभीष्ट है।

मेरे एक मित्र की युवती कन्या अचानक दुर्घटना-ग्रस्त होकर मर गई। इन मित्र महोदय का आचरण ऊपर दिए गए कृष्णस्वरूप के दृष्टान्त से एकदम भिन्न रहा। यह मित्र महोदय कई गाँवो के जमीदार थे। घराना प्रतिष्ठित और सम्पन्न था। गायन से इन्हे विशेष प्रेम था। खुद भी अच्छे गायक थे। अच्छे गवैयो की कद्र करते थे। शाम को रोज ही उनके यहाँ गाने-बजाने की महफिल जमती थी। प्रात काल अचानक एक दीवार गिर जाने से उनकी युवती कन्या दबकर मर गई। दोपहर तक उसका दाह-सस्कार कर दिया गया। स्वाभाविक रूप से सारा घर शोक-सन्तप्त था। लेकिन उनकी गाने-बजाने की महफिल शाम को प्रतिदिन की तरह जमी। बस्ती मे उनके इस आचरण की बडी चर्चा रही। मुझसे उन्होने अगले दिन एकान्त मे बताया—"सरला की मृत्यु के आघात ने मुझे विचलित कर दिया

है। लेकिन जानता हूँ ज्यों-ज्यो समय बीतेगा दु ख हल्का होता जाएगा। और एक दिन ऐसा भी आएगा कि उसकी यह मृत्यु मात्र एक कहानी बनकर रह जाएगी। संसार मे यही होता आया है और आगे भी यही होता रहेगा। हम किसी भी तरह अब सरला को वापस नही पा सकते। मैंने इस यथार्थ को कल से ही हृदय मे उतार लिया। दु खद बातो का बोझ हल्का करने के लिए यह जरूरी है कि उन्हे जल्दी-से-जल्दी विस्मृत कर दिया जाए। मैने वही करना प्रारम्भ कर दिया है।"

समाज मे लोगो ने भले ही उनके इस आचरण पर टीका-टिप्पणी की, किन्तु उनके जीवन के दृष्टिकोण को लोग कदाचित् नही देख पाए। दु ख को हल्का करने के लिए उनका यह यथार्थवादी दृष्टिकोण उचित और सामयिक था।

बुद्ध-कथाओ मे 'केशा गौतमी' नाम की एक स्त्री की कथा आती है। उसका एक-मात्र पुत्र मर गया और वह शोक से इतनी पागल हो गई कि लोगो से पुत्र को जिन्दा करने की ओषधियां पूछती फिरती। किसी समझदार व्यक्ति नें उसे गौतम बुद्ध के पास भेज दिया। बुद्ध ने सारी स्थिति समझी और महिला को आश्वासन दिया कि उसका पुत्र जिन्दा हो सकता है, बशर्त्ते कि एक मुट्ठी सरसो के दाने किसी ऐसे गृहस्थ से माँग लाए जिसके यहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। और वह भोली महिला दाने माँगने चल दी। किन्तु शाम तक ही उसे अपने

अज्ञान का पता चल गया, क्योकि सारे नगर मे उसे कोई परिवार ऐसा न मिला जिसके यहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो और तब वह समझ गई कि ससार मे मै ही अकेली ऐसी नही हूँ जिसे प्रियजन की मृत्यु का दुःख झेलना पड रहा है, वरन् प्रत्येक व्यक्ति को इस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। मृत्यु प्रकृति का शाश्वत नियम है।

और मृत्यु तो फिर भी बडी बात है, बहुत बार छोटी-छोटी घटनाएँ और नाम-मात्र की परेशानियो से लोग विचलित होने लगते है, क्योकि वे छोटी-छोटी बातों को बडी गम्भीरतापूर्वक लेते है।

'क' महोदय जब घर मे घुसते है तो घर की सफाई और सुव्यवस्था का बड़ी बारीकी से निरीक्षण करते हैं। यदि कोई फटा कपड़ा खूंटी पर दिखाई दे गया या किताबें बजाय अलमारी के मेज़ पर पडी मिली अथवा ड्राइग-रूम मे कोई कुर्सी ही टेढी दिखाई दे गई या फर्श पर फटा हुआ कागज़ पडा मिल गया तो उनका पारा चढ़ जाता है। सारे घर पर फटकार पडती है। बच्चे, नौकर और पत्नी की आफत आ जाती है। 'क' महोदय स्वय शाम तक परेशान रहते है। घर की सुव्यवस्था अच्छी बात ज़रूर है; लेकिन सुव्यवस्था का विचार भी जब हद से गुज़र जाता है तो वह एक सनक से ज्यादा कुछ नही होता। बहुत-से व्यक्तियो मे अलग-अलग तरह की सनक पाई जाती है।

कई लोग 'एटीकेट' और फैशन के इतने पाबन्द होते हैं कि जीवन मे उनका अपना कुछ रह ही नही जाता। फ़ैशन वास्तव मे व्यक्ति दूसरो को दिखाने के लिए करता है। किसी फैशनपरस्त आदमी के पास अगर ठीक फैशन के कपडे नही है, वह बाहर आना-जाना पसन्द नही करेगा। क्योकि उसे भय रहता है कि लोग क्या कहेगे (!) वह अपनी मर्ज़ी दूसरो के हाथ बेच देता है। फैशन के हाईकोर्ट फ्रास के एक विचारक ने कहा है कि "फैशनपरस्ती दिमागी गुलामी से ज्यादा कुछ नही है।" लेखक के एक मित्र श्री एस० एल० पण्डित जो कि उच्च-कोटि के पत्रकार हैं—विदेशियो के भोजो मे तथा राजदूतों से भेट करने के लिए भी अपनी देसी पोशाक कुर्ते-पैजामे या कुर्ता-धोती मे जाते हैं। उन्होने कभी उन लोगों के मध्य अपनी स्थिति को हास्यास्पद नही अनुभव किया। श्री पण्डित का कथन है कि "जिन लोगो के मन मे अपने प्रति हीन भावना रहती है, जो अपने अन्दर कोई-न-कोई कमी महसूस करते है, वे ही ज्यादा फैशनप्रिय होते है, बाहरी टीम-टाम से अपनी कमी को ढकने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यक्तियों मे आत्म-विश्वास की भी कमी पाई जाती है।"

आजकल तग कपड़ो का फैशन है। तग कपडे पहन-कर युवक-युवतियो को उठने-बैठने और झुकने तक मे परेशानी होती है, लेकिन वे परेशानी उठाकर भी फैशन के पाबन्द रहना चाहते हैं।

हॉलीवुड के एक प्रसिद्ध अभिनेता के बारे मे यह मशहूर है कि वह इतवार की छुट्टी के दिन कही आता-जाता नही ; ढीले कपडे पहने कभी अपनी बगीची के लॉन मे लोटता है , कभी पानी के हौज मे पडा रहता है। न वह उस दिन हजामत बनाता है न सूट पहनता है। उसका कथन है कि "एक सप्ताह लगातार बाहरी दिखावे की पाबन्दी से, आधुनिक फैशन के कपडों से, तकल्लुफाना बातचीत से मै अपने शरीर और मन को बोझिल पाता हूँ। इसीलिए इतवार के दिन मैं सारी पाबन्दियो को उतार फेंकता हूँ और स्वच्छन्दतापूर्वक लोटता हूँ, टहलता हूँ, सारा दिन घरेलू कपडों मे रहता हूँ। सोचता हूँ, काश ! मैं प्रतिदिन ही इस तरह की स्वच्छन्दता का उपभोग कर पाता।"

फैशन की आलोचना से यहाँ हमारा मतलब रूढिवादी तौर-तरीके से फैशन को कोसना नही है। बल्कि तात्पर्य सिर्फ इतना है कि इसकी पाबन्दी से जीवन मे अनावश्यक तनाव या भार नही आने देना चाहिए। इस सम्बन्ध मे बहुत सचेत और सतर्क रहना अनावश्यक गम्भीरता से ज्यादा कुछ नही है।

अनावश्यक गम्भीरता के और भी अनेक उदाहरण मिल सकते है। छोटी-छोटी बातो को लेकर उलझन और परेशानी मे नही पडना चाहिए।

एक बार किसी बडे व्यापारी के पास एक सामान्य स्थिति का ग्राहक बैठा था , कुछ व्यापार-सम्बन्धी बात-

चीत चल रही थी कि व्यापारी के पास एक तार आया। उसने तार को खोलकर पढ़ा और गद्दी के नीचे सरका दिया, और फिर ग्राहक से बातचीत करने लगा। लगभग आधा घण्टे बाद फिर तार आया; व्यापारी ने पढ़ा और उसे भी गद्दी के नीचे रख लिया। उस ग्राहक को देखकर बहुत कौतूहल हुआ, क्योकि तार जैसी चीज़ सामान्य जीवन मे बड़ी खलबली पैदा करने वाली होती है। अत उसने व्यापारी से पूछा—"सेठ जी, ये कैसे तार थे जिन्हे आपने गद्दी के नीचे सरका दिया ?"

व्यापारी ने हँसकर कहा—"पहले तार मे एक जहाज़ के डूब जाने की खबर है जिसमें मेरा एक लाख रुपए का माल था। दूसरे तार मे यह समाचार है कि एक दूसरा जहाज़ बन्दरगाह पर पहुँच गया है, उसमे भी हमारा एक लाख का माल है मगर उस माल के भाव बहुत चढ गए है। उसमें दो लाख का मुनाफा हुआ है।"

उस व्यापारी ने न तो एक लाख के घाटे की बात को गम्भीरता से लिया और न दो लाख के मुनाफे से हर्षोत्फुल्ल हुआ। घाटा और मुनाफा उसके जीवन की सामान्य बाते थी।

जीवन मे आर्थिक ही नही वरन् कई तरह के घाटे और फायदे होते हैं। उन सभी को यदि जीवन की सामान्य घटनाओ की तरह स्वीकार किया जाए तो दिमागी परेशानियो और उलझनो से बचा जा सकता है। सच तो यह है कि जीवन एक पहाडी नदी के समान है

जिसके मार्ग मे चट्टानें, रोड़े, पत्थर, बडे-बडे वृक्ष आदि अनेक बाधाएँ आती है। लेकिन उसका प्राञ्जल प्रवाह किसी बाधा से रुकता नही , कुण्ठित नही होता। वह मस्ती के साथ आगे ही बढता चला जाता है। जीवन का प्रवाह भी इसी तरह होना चाहिए।

कई बार आदर्शो का अनावश्यक बोझ भी ज़िन्दगी मे एक तल्खी और रूखापन ला देता है। एक पादरी महोदय रेलवे स्टेशन से गिरजाघर जाने के लिए टैक्सी पर बैठे। सयोगवश टैक्सी ड्राइवर उनका परिचित निकला , वह ड्राइवर नियमित रुप से गिरजे की प्रार्थना मे पत्नी सहित आता था। दोनो बडे मनोयोग से प्रार्थना करते थे। पादरी महोदय ने ड्राइवर से पूछा—"कहो जोजेफ! कुशल से हो न ? जिन्दगी कैसी चल रही है ?"

ड्राइवर कहने लगा—"हाँ पिता (फादर) सब ठीक ही है। हम लोग बडे नियम और सयम से रहते है। रोज ही प्रभु की प्रार्थना करते है। फिर बाइबिल पढते हैं। किसी को सताते नही, झूठ नही बोलते, ईमानदारी से पैसे कमाते है। हम पति-पत्नी कभी नही लडते। विषय-भोग भी हमने त्याग दिया है। सम्भवत ईश्वर हमारे पापो को अब क्षमा करेगा। सोचते है जल्दी ज़िन्दगी समाप्त हो जाए तो अच्छा है , क्योकि डर है कि कही कोई पाप न बन पडे। कदाचित् पिछले पापो के कारण ज़िन्दगी सूनी-सी लगती है ; हालाँकि हम लोग कोई बुरा आचरण नही करते।"

विद्वान् पादरी ने जोज़ेफ की मनोवैज्ञानिक उलझन और अनावश्यक गम्भीरता को समझा। उन्होने जोज़ेफ से कहा—"यह क्या वेवकूफी कर रहे हो तुम लोग! जिन्दगी को रसहीन और भारी बनाए हुए हो। इन बन्दिशो को उतार फेको!" और फिर पादरी महोदय ने जोज़ेफ को कुछ सुझाव दिए।

एक मास बाद सयोग से फिर पादरी महोदय की जोज़ेफ से भेट हो गई। जोज़ेफ फादर को देखकर मुस्कुराया। पादरी ने समझ लिया कि जोज़ेफ बदला है। क्योकि पहली वार की भेट मे पादरी महोदय ने लक्ष्य किया था कि जोज़ेफ के चेहरे पर एक सूनी-सूनी शान्ति और उदासी थी। इस बार उसकी मुस्कुराहट में जीवन के लक्षरण झलक रहे थे। उन्होने जोज़ेफ से पूछा, "कहो, अब जीवन कैसा चल रहा है?"

जोज़ेफ बोला, "हाँ फादर, अब कुछ अच्छा लगता है। अव हम दोनो कभी-कभी लडते भी हैं, फिर एक हो जाते है तो वडा अच्छा लगता है। मैं कभी-कभी हल्की शराब भी पी लेता हूँ। फिर हम पति-पत्नी एक ही बिस्तर पर सोते है। 'मेरी' (पत्नी) अब मुझे ज्यादा अच्छी लगती है। मैं आजकल कुछ ज्यादा पैसे कमाने की कोशिश में हूँ ताकि एक रेडियो खरीद सकूं। रेडियो मे आने वाले प्यार के गाने मेरी पत्नी को वहुत अच्छे लगते है।"

"ठीक है," पादरी महोदय वोले, "अव तुम जीना सीख गए हो।"

शराब पीने की बात लिखने से यहाँ हमारा तात्पर्य शराब की वकालत करने का नही है। अपितु संकेत सिर्फ़ इस बात की तरफ है कि जरूरत से ज्यादा पाबंदियाँ जीवन में अनावश्यक गम्भीरता ले आती हैं।

एक सज्जन इस बात से चिन्तित रहते थे कि उनका लड़का बाजार से मोल-तोल करके किफायत का सौदा नही खरीदता था। सब्ज़ी, कपड़ा, साबुन, जूते आदि वह जो कुछ भी खरीदता था, दुकानदार को मुँहमाँगा मोल देकर ले आता था। पुत्र कहता था कि जब दुकानदार ठीक कीमत बताता है तो मोल-भाव करना व्यर्थ है। दूसरे मोल-भाव से खरीदार का व्यक्तित्व हल्का हो जाता है। पिता महोदय कहते थे कि दुकानदार कभी ठीक मोल नही बताता, वह हमेशा ग्राहक से ज्यादा कीमत वसूल करने का इरादा रखता है। बिना मोल-तोल चुकाए ग्राहक हमेशा लुटता है। उनके लिए यह बात बड़ी परेशानी पैदा करने वाली बनी रहती थी और वे काफी गम्भीरता से इस पर सोच-विचार करते रहते थे। उन्हें यह दृढ निश्चय हो गया था कि उनका पुत्र सारी जिन्दगी समझदारी से सौदा नही खरीद सकेगा, और हमेशा यूँ ही लुटता रहेगा। यह छोटी-सी बात हमेशा उनके मन को सालती रहती था।

इस सिलसिले मे एक दूसरा उदाहरण सुनिये- एक छोटी-सी बस्ती मे बाहर से कोई तस्वीर बेचने वाला आया। उसके पास काफी सुन्दर-सुन्दर चित्र थे। वह

घर-घर और दुकान-दुकान घूम-घूमकर चित्र बेच रहा था। एक डाक्टर महोदय ने एक स्वस्थ और सुन्दर बच्चे का चित्र उससे आठ आने में खरीद लिया। शाम को कुछ मित्रो को उन्होने वह चित्र दिखाया। चित्र अच्छा था, सभी ने तारीफ की। एक मित्र नें पूछा, "आपने यह चित्र कितने मे खरीदा ?"

"आठ आने मे।" डाक्टर साहब नें बताया।

मित्र बोले, "वाह साहब! वह तो आपको ठग ले गया। यही चित्र बाजार मे उसने छै-छै आने मे बेचे है!"

डाक्टर साहब मुस्कराकर बोले—"आपने इस चित्र की उपयोगिता को पैसो से नापा। लेकिन मैंने यह किसलिए खरीदा है जरा उस पर भी गौर कीजिए। हमारे लडके की बहू पहली बार गर्भवती हुई है। मैं यह चित्र उसके कमरे मे लगवाऊँगा। प्रतिदिन चित्र देखनें से उसके मन पर इस स्वस्थ और सुन्दर बालक की छाप पड़ेगी तो गर्भस्थ बालक को प्रभावित करेगी और उसका बच्चा चित्र के अनुरूप ही स्वस्थ और सुन्दर बन सकता है। यदि आठ आने मे इस उद्देश्य की पूर्ति होती है तो क्या यह मूल्य अधिक है ?" इस पर वह मित्र महोदय चुप हो गए क्योकि डाक्टर साहब का दृष्टिकोण बडा यथार्थवादी था।

[वास्तव मे जीवन की नाप-तौल जो लोग पैसे से करने लगते हैं वे जीवन का सही मूल्याकन करने मे असमर्थ रहते हैं। एक-एक पैसे का हिसाब रखने वालो की

जिन्दगी इतनी व्यापारी हो जाती है कि पैसा उस पर छा जाता है और वे मात्र अर्थलाभ को जिन्दगी की सफलता और पैसे की हानि को जीवन की हानि समझने लगते हैं।

और एक पक्ष की ओर विचार कीजिए। जीवन में मनुष्य को कई बार अप्रत्यागित परिस्थितियो का सामना करना पडता हे, और उनसे निपटने के लिए उसे अप्रत्याशित काम भी करने पडते है। ये अप्रत्याशित काम कई लोगो को वडे भारी लगने लगते है। एक साहव को अपने पुत्र की ऊँची पढाई के लिए काफी रुपए की जरूरत पडी, उनके पास नकद रुपया नही था। सयोग कि कही दूसरी जगह से भी रुपए का प्रवन्ध न हो सका। हारकर उन्हे अपनी पत्नी का सोने का जेवर वन्धक (गिरवी) रखकर रुपया लेना पडा। जेवर गिरवी रखने की वात ने उनके मन पर वडा असर किया। एक तरह की हीन-भावना उनके मन मे पैदा हो गई और वह इस तरह सोचने लगे—'जीवन मे हमने कभी नही सोचा था कि जेवर गिरवी रखने की नौवत भी आ सकती है। आज हम इस दशा को पहुँच गए कि हमे घर का जेवर रेहन रखना पडा।' इतना ही नही वरन् वे एक हद तक अपने को अपराधी समझने लगे। इस घटना को उन्होने इतनी गम्भीरता मे लिया कि कई महीने तक उदास वने रहे, मन की खुशी और जीवन का आकर्षण ही खो वैठे।

वास्तव मे ऐसी परिस्थितियाँ जीवन की गम्भीर समस्या नही वननी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में

इस तरह की परिस्थितियाँ आती है ; अप्रत्याशित घटनाएँ होती हैं। यह जीवन-प्रवाह का नियम है। सच तो यह है कि ये बाते समस्या तब बनती है जब हम उनके लिये तैय्यार नही रहते। वैसे किसी अप्रत्याशित बात के लिए व्यक्ति तैय्यार भी नही रह सकता। किन्तु कोई भी घटना घटने अथवा विषम परिस्थिति आने पर यह नही समझ लेना चाहिए कि हम ही अपवाद रूप से इसके शिकार हुए है, वरन् यथार्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, अर्थात् इस तरह की छोटी-बडी बाते जीवन मे आना स्वाभाविक है—ऐसा समझकर चलना चाहिए। तब समस्याओ की गम्भीरता और परिस्थितियो का बोझ स्वय ही हल्का हो जाता है। जीवन के मूल्याकन मे हमे भूल नही करनी चाहिए।

⊙⊙

आत्मविश्वास

जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास ब्रह्मास्त्र के समान काम करता है। जिन लोगों के पास आत्मविश्वास की पूंजी होती है, वे मार्ग की बडी-से-बडी बाधाओ को आसानी से पार कर जाते हैं। जेम्स ओसले का कथन है कि "आत्मविश्वासी मनुष्य के मार्ग की रुकावटें स्वय हटकर उसे रास्ता दे देती हैं।"

लेखक के एक सहपाठी ने किस प्रकार अपने दृढ आत्मविश्वास से किस प्रकार अपना अभीप्सित प्राप्त किया, यह उल्लेखनीय है।

"दिलीपसिंह का बचपन से ही थानेदार बनने का स्वप्न था और वह हर मूल्य पर अपने स्वप्न को साकार करने के लिए कटिबद्ध था। लेकिन विपरीत परिस्थितियो ने उसका मार्ग रोक दिया। उन दिनो थानेदारी की ट्रेनिंग में जाने के लिए हाई स्कूल की परीक्षा पास करनी जरूरी थी। लेकिन चार वर्ष तक लगातार दिलीपसिंह हाई-स्कूल परीक्षा मे फेल होता रहा। कारण यह था कि जहाँ उसके और सब विषय अच्छे थे, गणित उसे बिल्कुल नही

आता था और वह चार वर्ष तक प्रयत्न करने पर भी गणित मे पास न हो सका। थानेदार बनने की आशा धूमिल होने लगी। परन्तु उसके आत्मविश्वास मे राई-भर कमी नही आई। घर वालो और मित्र-परिजनो ने उसके स्वप्न की शेखचिल्लियो से तुलना करनी शुरू कर दी। परिस्थितियो से बाध्य होकर दिलीप ने कही म्यूनिसिपैलिटी की नौकरी की, फिर कुछ दिन एक कैमिस्ट की दुकान पर सेल्समैन का काम किया। इसी तरह दो वर्ष और निकल गए। लेकिन इन दो वर्षों मे एक क्षण के लिए भी उसका ध्यान अपने लक्ष्य से नही हटा।

इस सिलसिले मे यह और उल्लेखनीय है कि इस समय तक दिलीपसिंह ने थानेदारी की काफी योग्यता भी प्राप्त कर ली थी, क्योकि उसके मन मे थानेदार बनने की सच्ची लगन थी। कस्बे के थाने मे जो भी नया थानेदार आता दिलीपसिंह उससे मिलता और दोस्ती कर लेता था। दोस्ती इस रूप मे कि किसी को चाचा बना लेता, किसी को ताऊ और फिर उनके पास आना-जाना उनकी सेवा करना, उनके काम-धन्धो मे उनकी मदद करना उसके स्वभाव की विशेषता बन गई थी। फलत हरेक दरोगा उसकी मदद करता, उसे उत्साहित करता। इस तरह थानेदारों के सम्पर्क मे रहकर उसने यह सब सीख लिया था कि रोजनामचा किस तरह भरा जाता है; रवानगी किस तरह लिखी जाती है, रिपोर्ट किस तरह दर्ज होनी है, यहाँ तक कि मुल्जिम को

गालियाँ किस तरह दी जाती हैं और गवाह किस तरह तैय्यार किए जाते हैं, गुण्डों को किस तरह काबू करना चाहिए तथा शहर का इन्तज़ाम करने के क्या गुर हैं। दिलीपसिंह के पास सिर्फ थानेदारी की सनद ही नही थी अन्यथा पूरे अर्थों मे वह थानेदारी की योग्यता रखता था।

इधर-उधर की नौकरियाँ चूँकि दिलीपसिंह के लक्ष्य मे सहायक नही थो, इसलिए उसने नौकरियाँ छोड दी। और फिर एक बार थानेदारी की ट्रेनिंग मे भर्ती होने के प्रयत्नो मे लग गया। घर वालो ने उसकी इस महत्वाकाक्षा को एक सनक समझ लिया था तथा दूसरे मित्र-परिजन भी उससे कोई उत्साहवर्धक बातचीत नही करते थे। लेकिन दिलीपसिंह दृढ आत्मविश्वास के साथ अपनी लक्ष्य-प्राप्ति मे लगा था। बाधा वही पुरानी थी—वह हाई स्कूल पास नही था। उसने जितने चाचा-ताऊ थानेदार बनाए थे, उनमे से कई अच्छी पदोन्नति कर गए थे। उसने अन्ततोगत्वा सभी के दरवाजे खटखटाए; और अन्त मे एक हल सामने आया कि उसे एक सिपाही के रूप मे पुलिस मे भर्ती हो जाना चाहिए, योग्य और पढे-लिखे सिपाहियो को दो वर्ष की नौकरी के बाद थानेदारी की ट्रेनिग के लिए नामजद कर दिया जाता था। दिलीपसिंह ने कान्स्टेबिल की हैसियत से नौकरी शुरू करने मे कोई आगा-पीछा न किया; योग्यता उसमे थी ही, दो वर्ष बाद नामजद होकर ट्रेनिग मे पहुँच गया।

उसने वहाँ से ससम्मान परीक्षा पास की और अपने स्वप्न को साकार करके ही दम लिया। कहना न होगा कि आगे चलकर दिलीपसिंह बहुत कुशल थानेदार निकला।

और यह केवल दिलीपसिंह का ही उदाहरण नही है। न जाने और कितने व्यक्ति दृढ आत्मविश्वास के द्वारा ऊँचे उठे है और अपनी लक्ष्य-प्राप्ति मे स्वयं अपने सहायक हुए हैं।

कोई व्यक्ति अपने अन्दर आत्मविश्वास किस तरह जगाए, इसका कोई निश्चित नुस्खा या विधि नही है। विश्वास वास्तव मे मन के अन्तराल मे पैदा होने वाली चीज है। आशा और आत्मविश्वास का चोली-दामन का साथ है। संसार मे आशा सबसे अधिक स्थायी वस्तु है, क्योकि मनुष्य का सब-कुछ खो जाने पर भी आशा ही एक ऐसी चीज़ है जो उसके साथ रहती है। दूसरे महायुद्ध मे हिटलर की नाज़ी सेना ने रूस के अन्दर घुसकर काफी बरबादी की और कदम-कदम पर रूसियो को हराया। लेकिन रूसी पूर्ण आशावान थे, उनमे दृढ आत्मविश्वास भी था कि वे जो कुछ खो चुके हैं, सब वापस ले लेंगे। और अन्त मे उन्होने अपनी मातृभूमि को ही शत्रु के पंजो से मुक्त नही कराया, बल्कि शत्रु के घर मे घुसकर उसे परास्त किया। कहना न होगा कि रूसी सेना यह सब-कुछ आत्मविश्वास के बल पर ही कर सकी। उसने साहस नही छोडा। साहस आत्मविश्वास

से कोई अलग वस्तु नही है। कह सकते हैं कि साहस के साथ जब दृढता मिल जाती है वही आत्मविश्वास होता है। वास्तव मे आत्मविश्वासी व्यक्ति किसी से डरता नही। बुरी-से-बुरी परिस्थिति का सामना करने के लिए उसके पास बल होता है।

आत्मविश्वास को एक दूसरे दृष्टिकोण से परखिए। अनेक लोगो का किसी देवी-देवता में अथवा ईश्वर मे बडा भारी विश्वास होता है। अपने इष्ट के माध्यम से वे हर काम मे सफलता की आशा करते हैं, अपने अन्दर मुसीबतो को झेलने एव विपम परिस्थितियो से जूझने की शक्ति अनुभव करते है क्योकि उन्हे अपने इष्ट मे बडा भारी विश्वास होता है। इस विश्वास का रहस्य और कुछ नही है, व्यक्ति देवी-देवता अथवा ईश्वर के माध्यम से अपने मे ही विश्वास करता है, उसका आत्मविश्वास ही भी उसे सब-कुछ देता है।

मैंने शारीरिक स्वास्थ्य पर काफी पुस्तके लिखी हैं। उनमे कुछ पुस्तके यौन विषयक (सैक्स सम्बन्धी) भी हैं। सभी पुस्तके पाठको मे काफी लोकप्रिय हुई हैं। इन पुस्तको को पढकर प्रतिदिन काफी पाठक मुझे पत्र भी लिखते हैं, वे मुझसे अपनी स्वास्थ्य और यौन समस्याओ का समाधान चाहते हैं। किन्तु मुझे बडा आश्चर्य होता है कि ६० प्रतिशत पाठकों के पत्र हीन भावना और निराशा से भरे होते हैं। उन सब में एक ही ढग की बात होती है—"अब आपकी शरण मे हूँ। आप मुझे बचा

लीजिए। आप मुझे जीवनदान दीजिए। आपका यह अहसान जिन्दगीभर नही भूलूंगा। अगर मैं ठीक नही होता हूँ तो आत्महत्या के सिवाय मेरे पास कोई चारा नही है। मेरे जीवन की रक्षा आपके हाथ मे है।"

इस तरह के पत्र लिखने वाले सभी व्यक्ति अपना आत्मविश्वास खोए हुए है। जीवन के प्रति उन्हे निराशा होती है। वे अपने प्रति हीन भावना से पीड़ित होते हैं। यूँ किसी दूसरे से कोई सहायता माँगना अथवा मार्गदर्शन चाहना कोई बुरी बात नही है। समाज मे एक-दूसरे की सहायता से ही काम चलता है। लेकिन निराश होकर परिस्थितियो मे डूबने लगना वास्तव मे कायरता की बात होती है और जो लोग परिस्थितियो से प्रताड़ित होकर आत्महत्या जैसी चेष्टा के इरादे बनाने लगते है वे सचमुच ही परले दर्जे की कायरता का प्रदर्शन करते हैं।

कहना न होगा कि यह सब-कुछ व्यक्ति में आत्मविश्वास खो बैठने के कारण होता है। आत्मविश्वास के अभाव में व्यक्ति बहुत दुर्बलहृदय हो जाता है। 'महाभारत' के प्रारम्भ में अर्जन को रणक्षेत्र में वस्तुत मोह नही हुआ था। वह आत्मविश्वास खो बैठा था। कृष्ण ने गीता के उपदेश द्वारा उसका आत्मविश्वास ही जगाया था। एक स्थल पर कृष्ण ने कहा है :—

क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप !!

अर्थात् हे अर्जुन ! तुझे यह मानसिक कमज़ोरी शोभा

नही देती, हृदय की दुर्बलता को छोडकर उठ और कर्म-रत हो।

संसार के सभी महापुरुष आत्मविश्वास के सहारे बढे और उठे हैं। आत्मविश्वास के बल से ही योद्धा युद्ध जीतते हैं, वैज्ञानिक अपनी खोजो और आविष्कारो मे सफल होते है। आत्मविश्वास के सहारे विद्यार्थी परीक्षा में सफल होता है।

बहुत-से लोग दूसरो से बात करते हुए हिचकते हैं, किसी अफसर या बडे आदमी के पास जाने मे कतराते हैं, कई लोग तो पुलिस स्टेशन अथवा कचहरी जाने मे घबराते है। ऐसे सभी लोगो मे आत्मविश्वास की कमी होती है। मनोवैज्ञानिको का यहाँ तक कथन है कि हकलाकर बोलना भी आत्मविश्वास की कमी का सूचक है।

अपने अन्दर आत्मविश्वास जगाने के लिए व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण करना बहुत ज़रूरी है। आत्मनिरी-क्षण द्वारा उसे अपनी गुप्त शक्तियो को जगाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अपनी खुद की क्षमता और योग्यता होती है। प्राय लोग अपनी इन शक्तियो को नही पहचान पाते। सच तो यह है कि आत्मविश्वास कही बाहर से प्राप्त की जाने वाली वस्तु नही है। वह तो व्यक्ति के अन्दर ही होता है। आवश्यकता उसे सजग करने की है।

यदि आप अपने अन्दर आत्मविश्वास की कमी पाते हैं, तो कोई ऐसा काम अपने लिए चुनिए जो आपने न

किया हो ; चाहे वह काम चारपाई बुनना ही हो। और फिर उसमें दृढ निश्चय के साथ लग जाइए, काम को पूरा करके ही दम लीजिए। ऐसा करने से आप बहुत-कुछ अपने बारे मे सीखेंगे-जानेगे। काम पूरा हो जाने पर आपके अन्दर एक दृढता आएगी और आप अपने पर भरोसा करने लगेंगे। कठिन लगने वाले कार्य करने का चाव भी मनुष्य मे बहुत आत्मविश्वास पैदा करता है। कठिन कार्यों से जूझने पर व्यक्ति में दृढता और आत्म-विश्वास दोनो बढ़ते हैं।

यहाँ एक और तथ्य उल्लेखनीय है कि कोई भी मुसीबत अथवा विपम परिस्थिति आने या जीवन मे कोई सकट उपस्थित हो जाने पर उसके हल के लिए प्रयत्नशील होते हैं। इधर-उधर दौडधूप करके सकट-निवारण की कोशिश करते हैं। ऐसे अवसरो पर दूसरो से सहयोग भी मिलता है। लेकिन व्यक्ति खुद अपनी सबसे बडी सहायता करता है। वह सकट दूर करने के उपाय सोचता है और फिर उन्हे क्रियान्वित करता है। सारे कामो का कर्त्ता तो वही होता है। व्यक्ति स्वय अपना सबसे बडा सहायक है। लेकिन कई बार जब लोग निराशा की दल-दल मे फँस जाते हैं तो वे समझने लगते हैं कि कोई उनका सहायक नही है, वे अकेले क्या कर सकते हैं! वस्तुत: ऐसे मौको पर व्यक्ति स्वय को ही भूल जाता है। आशा, साहस, आत्मविश्वास, प्रयत्नशीलता सब उसी के अन्दर तो होते हैं। लेकिन यह तथ्य उसकी दृष्टि से

नज़रअन्दाज़ हो जाता है।

रामायण मे एक प्रसग आता है कि जब नल, नील, जामवन्त और हनुमान आदि सीता जी का पता लगाने के सिलसिले मे समुद्रतट पर पहुँचे तो प्रश्न आया कि समुद्र पार करके लका किस प्रकार पहुँचा जाए? सबने हनुमान जी से सागर पार करने का अनुरोध किया। लेकिन हनुमान बोले, "भला मैं अकेला कैसे सागर पार कर सकता हूँ?" वस्तुत उन्हे अपनी शक्ति का भान ही नही था। तब जामवन्त बोले—"हनुमान जी, आप अपनी शक्ति को ही नही पहचानते। आपने तो बालकपन मे ही सूर्य को मुँह मे रख लिया था।" जामवन्त ने उन्हे और दूसरे साहसिक कार्यों का भी स्मरण कराया। फिर तो हनुमान जी मे आत्मविश्वास जाग उठा और वे एक छलाँग मे सागर पार करके लका पहुँच गए।

उपर्युक्त प्रसग भले ही पौराणिक है किन्तु इससे यह तथ्य अवश्य सामने आता है कि व्यक्ति को अपना आत्म-विश्वास जगाना चाहिए। निराशा मे डूबकर वह अपनी क्षमता ही भूल जाता है। ऐसे मौको पर आप आत्म-निरीक्षण कीजिए। सोचिए जब आप विद्यार्थी थे तो हमेशा कक्षा मे प्रथम आते रहे है। खेलकूद मे आप सब-से अधिक इनाम पाते थे। अनेक अवसरो पर अपने साहस और सूझ-बूझ का परिचय देकर आत्मोन्नति की है। वह क्षमता अब भी आपके अन्दर है। उसे पहचानिए और जगाइए, फिर यह बाजी भी आपकी ही रहेगी। ⊙⊙

छिद्रान्वेषण

छिद्रान्वेषण का अर्थ है दूसरो के दोष देखना अथवा उनमें दोष निकालना। कदाचित् ससार मे मनुष्य के लिए सबसे सरल कार्य दूसरों के दोष देखना ही है। हम बडी आसानी से किसी व्यक्ति के लिए यह कह देते हैं—वह तो घमण्डी है, मूर्ख है, अमुक आदमी झूठा और गप्पी है, तीसरा कोई व्यक्ति शराबी है, व्यभिचारी है। फलाना आदमी बेईमानी करता है, चरित्रहीन है।

लेकिन एक वेश्यागामी भी दूसरे क्षेत्रो मे चरित्रवान् हो सकता है। एक शराब पीने वाला भी ईमानदार हो सकता है। एक जुआ खेलने वाला भी दयावान् और परोपकारी हो सकता है।

सच तो यह है कि सामाजिक आदर्श और मर्यादाएं इतनी कठोर होती हैं कि उनके घेरे मे चलना व्यक्ति के वश की बात नही होती। परिस्थितियाँ मनुष्य को मर्यादा-उल्लघन के लिए विवश कर देती हैं। यदि कोई निस्सहाय और भूखा व्यक्ति जीवन-रक्षा के लिए रोटियाँ चुराकर खा लेता है, तो सामाजिक मर्य्यादा के अनुसार वह भले

ही चोर करार दे दिया जाए किन्तु मानवता की आचार-संहिता के मुताबिक वह चोर नही है। खैर, यहाँ हमारा विषय सामाजिक आदर्शों की नुक्ताचीनी नही है। हम अपने उसी व्यावहारिक पक्ष पर आते हैं।

दूसरो के छिद्रान्वेषण से वस्तुत हम अपनी ही हानि करते हैं। वह इस तरह कि जब हम किसी व्यक्ति के दोषो को देखने लगते है तो हम उसे बुरा और गिरा हुआ आदमी मान लेते है और फिर स्वाभाविक रूप से उससे घृणा करने लग जाते हैं। लेकिन किसी मनुष्य को दूसरे मनुष्य से घृणा नही करनी चाहिए। घृणा करना एक भारी दुर्गुण है, आदर्शवाद की दृष्टि से ही नही व्यावहारिक दृष्टि से भी जब हम दूसरो से घृणा करते हैं तो टोटे मे रहते हैं, क्योंकि जिससे भी हम घृणा प्रकट करेंगे वह हमारा शत्रु हो जाएगा। और व्यक्ति को जीवन मे मित्र बनाने है, शत्रु नहीं।

इसके अलावा दूसरो के दोष देखना जब किसी व्यक्ति की आदत बन जाती है तो वह उसके गुण नही देख पाता, जबकि प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ-न-कुछ गुण भी अवश्य होते हैं। दूसरी ओर उसकी यह प्रवृत्ति बन जाती है कि वह अपने को ऊँचा और बडा समझने लगता हैं। यह प्रवृत्ति व्यक्ति मे झूठे घमण्ड को जन्म देती है जो वास्तव मे एक बडा दुर्गुण है। इस दुर्गुण से कोई भी व्यक्ति आत्मनिरीक्षण नही कर पाता।

मान लीजिए कि आपके मुहल्ले मे कोई व्यक्ति

वेश्यागामी है, लेकिन मुहल्ले मे वह बडे मेल-जोल से रहता है ; किसी की बुराई-भलाई मे नही है , वक्त-बे-वक्त सबके काम आता है ; किसी की बहू-बेटी को भी बुरी निगाह से नही देखता , तो क्या उसे बुरा व्यक्ति मान लेना उचित है ? सच तो यह है कि प्राय समाज की प्रताडना व्यक्ति को कुपथगामी बना देती है। एक कहावत है कि 'आदमी का कुछ बुरा नही होता।' इन बातो को हमे थोडी गहराई से देखना चाहिए। जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं कि गहराई से देखने पर यही पाएँगे कि किसी व्यक्ति मे यदि कोई तथाकथित दोष है तो वह परि-स्थितियो-वश पैदा हुआ है। यदि किसी व्यक्ति की शादी नही हुई, अथवा जवानी मे ही उसकी पत्नी मर गई और फिर लोगो ने उसकी शादी नही कराई, ऐसी हालत मे यदि उसके किसी स्त्री से अवैध सम्बन्ध हो जाएँ अथवा वह वेश्यागामी हो जाए तो वह स्वय इसके लिए कहाँ तक दोषी है ? दर असल ऐसे लोगो की उपेक्षा या छिद्रान्वेषरण नही करना चाहिए बल्कि उन्हें तो सँभालना चाहिए। किसी कवि ने लिखा है —

आदमी लाख सँभलने पे भी गिरता है मगर,
उसको जो झुक के उठाले वो खुदा होता है।

इस मसले को आप एक दूसरे खूबसूरत चश्मे मे से भी देख सकते हैं। इस सिलसिले मे एक उदाहरण सुनिए।

दो भाई थे। सुविधा के लिए नाम रख लीजिए रमेश और सुरेश। रमेश सुरेश से दस साल बड़ा था।

रमेश की शादी हो चुकी थी और वह अपने कार-रोजगार से लग गया था। सुरेश जब बडा हुआ तो रमेश ने उसे दूसरा काम शुरू करा दिया ताकि वह भी जीवन मे जम जाए। दोनो भाइयो मे बडा प्रेम था। किन्तु सुरेश नातजुर्बेकार और लापरवाह तबीयत का था। उसे अपने काम मे घाटा होने लगा। घाटे की बात बडे भाई से कहने मे उसकी अयोग्यता जाहिर होती है इसलिए सुरेश ने बडे भाई के सामने स्थिति को स्पष्ट नही किया। फल यह हुआ कि घाटा धीरे-धीरे बढता गया और एकाएक काम फेल हो गया। उसकी अयोग्यता और लापरवाही रमेश के सामने नगे रूप मे आ खडी हुई। कर्जदार अपना रुपया माँगने आ खडे हुए। बडे भाई को इससे बहुत आघात पहुँचा। ऐसी स्थिति मे बहुत-से मित्र-परिजन भी अपनी राय देने और टीका-टिप्पणी करने आ जाते हैं। सभी ने रमेश से यही कहा कि सुरेश को अलग कर दो, जो कुछ किया है अपने-आप भरे। तुम आखिर कहाँ तक उसकी मदद करोगे ! कई टीका-टिप्पणी करने वालो ने यह भी कहा—"भई, टोटा होने का कोई काम नही था, मगर सुरेश ने तो रुपया उडाया है। हमने सुना है कि उसने शराब भी पी है। और भी रगरेलियाँ की है। खूब सैर-सपाटे भी करता था।"

किन्तु रमेश का अपना दृष्टिकोण सबसे भिन्न था। उसे अपने छोटे भाई सुरेश से बेहद प्यार था। उसे यह बात बर्दाश्त न थी कि सुरेश को अपने से अलग कर दे,

उसे दुनिया मे ठोकरे खाने के लिए छोड दे और जो कुछ बेवकूफियाँ उसने की हैं उनकी सजा भुगतने के लिए उसे धकेल दे। [वस्तुत जिससे सच्चा प्रेम होता है उसमे अटूट विश्वास भी होता है। विश्वास ही तो प्रेम को ज़िन्दा रखने वाली शक्ति है।] अन्ततोगत्वा रमेश ने सारी घटना को अपने ढग से सोचा और यही निष्कर्ष निकाला कि नातजुर्बेकारी के कारण सुरेश धोखा खा गया। साथ ही रमेश छोटे भाई की भूल को भी समझ गया कि उसने बिगडते हुए काम की सूचना उसे न दी। रमेश दूरदर्शी था, सारी स्थिति का नक्शा उसके सामने खिच गया। इस टोटे के आघात से सुरेश भी वडे भाई के सामने क्षुब्ध और लज्जित था। रमेश ने निश्चय किया कि भाई को उठाना है, इस समय उसे आश्वासन, सहानुभूति और मार्गदर्शन की आवश्यकता है। उपेक्षा उसे और गहरे गर्त्त मे ढकेल देगी जिसके परिणाम काफी बुरे भी निकलेगे।

भाग्य की बात जहाँ कई अवसरो पर व्यक्ति को निकम्मा बना देती है, कुछ दूसरे मौको पर वडी लाभ-कारी भी साबित होती है। रमेश ने सुरेश के बारे मे यही राय कायम की कि बेचारे का भाग्य उल्टा था सो मुसी-बत मे पड गया, वर्ना लडका होशियार और सजीदा है। जब वक्त उल्टा होता है तो बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। फलत रमेश ने जब ऐसा दृष्टिकोण अख्तियार किया तो सुरेश को दोषी नही पाया, और इसलिए वह उससे

घृणा नही कर सका।

यह एक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति मे जहाँ कमज़ोरियाँ और कमियाँ होती हैं, दूसरी ओर उसमें कुछ गुण और खूबियाँ भी होती हैं। व्यक्ति को उठाने के लिए यह जरूरी होता है कि उसकी खूवियो को उभारा जाए, उसके गुणों को विकसित किया जाए। फिर तो वह अपनी कमज़ोरियों और कमियों पर स्वय काबू पा लेता है। किन्तु इसके विपरीत जब छिद्रान्वेषण और कटु आलोचना द्वारा उसके अवगुणो को उघाडा जाने लगता है तो वे उसकी सद्वृत्तियो को दबा लेते है। उसकी अच्छाइयाँ मानो एक गड्ढे मे धकेल दी जाती है।

उपर्युक्त कथा मे बडे भाई रमेश ने सुरेश के प्रति वडा युक्तिपूर्ण दृष्टिकोण रखा। अपनी प्रेम और सहानुभूति से उसे प्रेरणा दी, उठाया। नए सिरे से दूसरा काम करने मे सुझाव दिये और मदद की। और अन्त मे इस सद्व्यवहार और दूरदर्शिता का वडा मीठा फल निकला। सुरेश ने अपनी पिछली कमजोरियो पर विजय पाई और नए काम मे सफल हुआ। किन्तु इससे भी मीठा फल यह निकला कि दोनो भाइयो के बीच जो एक गहरी खाई बन जाने का वातावरण उपस्थित हो गया था, वह टल गया। सद्व्यवहार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने उस खाई को प्रेम से पाट दिया।

इसलिए छिद्रान्वेषण नही करना चाहिए; क्योंकि वह व्यक्ति को व्यक्ति से दूर फेक देता है।

आजकल हमारे देश मे कुछ ऐसी राजनैतिक हवा चली हुई है कि जिसने आम आदमी के स्वभाव मे छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति पैदा कर दी है। विरोधी दल सत्तारूढ को भ्रष्टाचारी और नाकाबिल बताता है और सत्तारूढ दल विरोधियो पर प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक अथवा कम्युनिस्ट होने का आरोप लगाता है। इसका फल यह हो रहा है कि लोग ठोस काम न करके एक-दूसरे की नुक्ताचीनी मे अपनी शक्ति बर्बाद कर रहे हैं।

आजकल एक औसत दर्जे के व्यक्ति की प्रवृत्ति क्या है, इसका असली चित्रण लेखक को एक कॉफी हाउस मे मिला। बराबर की मेज पर तीन व्यक्ति जलपान कर रहे थे। सामयिक विषयो पर गपशप जारी थी। एक नौजवान सज्जन भ्रष्टाचारी मन्त्रियो, अफसरो और चोर-बाजारी करने वाले व्यापारियो की कटु आलोचना कर रहे थे। वे बडे पुरज़ोर तरीके से मेज पर घूँसे मार-मारकर कहते थे—

"भ्रष्टाचारी मन्त्रियो को देशनिकाला दे देना चाहिए। मगर भ्रष्टाचार साबित हो जाने पर भी सरकार मन्त्रियों से कुछ नही कहती। उनके मामले दबा दिए जाते हैं। ··

भ्रष्टाचारी अफसरो की सारी सम्पत्ति सरकार को जब्त कर लेनी चाहिए और उन्हे हमेशा के लिए नौकरी से अलग कर देना चाहिए। मगर अफसरो पर भ्रष्टाचार के मुकद्दमे चलते हैं और अन्त मे निर्दोष करार दे दिये

जाते हैं।…

जमाखोरो और चोरबाज़ारी करने वाले व्यापारियो को सरे बाजार कोडे लगवाने चाहिए। उनके व्यापार लाइसैन्स रद्द कर देने चाहिए।"

इन सज्जन के कथन से यह मालूम होता था कि अगर इनके हाथ मे शासन की बागडोर दे दी जाए तो शायद एक दिन मे भ्रष्टाचार को उखाड फेकेगे।

और अगले दिन किन्ही दो दूसरे मित्रो के साथ वही नौजवान सज्जन कॉफी हाउस मे जलपान कर रहे थे। वे एक मित्र से बोले—"भई जैन साहब! मकान का नक्शा मैंने आपको दे ही दिया है, और मैंने तो मकान बनाना भी शुरू कर दिया है। अब नक्शा पास कराना आपका काम है। आप शर्मा ओवरसियर से सीधी बात करो कि नक्शा पास करना है और क्या लेना है। आज-कल कोरी बातो से काम नही चलता। हम तो इसी बात मे विश्वास करते हैं कि पैसे दो और काम कराओ, वर्ना कोई तुम्हारा काम क्यो करेगा? आप कल मुझे जवाब दे देना और हाथ-के-हाथ पैसे ले जाना। परसो को पास-शुदा नक्शा मेरे पास आ जाना चाहिए।"

और यह दुरगा चरित्र अकेले इस नौजवान का हो, ऐसा नही है। आज अधिकाश लोग समाज मे जिन कार्यों के लिए दूसरो की निन्दा करते है, स्वय भी उनमे ही लिप्त हैं। वस्तुत. छिद्रान्वेपी लोग दूसरो का कर्तव्य निश्चय करने में बड़ी ही तत्परता दिखाते हैं—"उसे ऐसा

नही करना चाहिए था"—"उसे इस काम को यूं न करके इस तरह करना चाहिए था"—"अब उसे चाहिए कि ऐसा करे।" इस तरह के नारे और फतवे दूसरो के लिए आप आमतौर पर छिद्रान्वेपी लोगो से सुनेगे। लेकिन सचाई यह है कि यदि व्यक्ति दूसरो का कर्त्तव्य निश्चित करने की बजाय स्वय अपना कर्त्तव्य-पालन करे तो सारे समाज का नक्शा ही बदल जाए। यदि हम सब लोग थोडा कष्ट उठाकर यह निश्चय कर ले कि चोर-बाजार से कोई चीज़ नही खरीदेगे और रिश्वत देकर कोई काम नही कराएँगे, फिर देखिए भ्रष्टाचार इस तरह गायब हो जाएगा जैसे गधे के सिर से सीग! ⊙⊙

अपने को पहचानो !

आत्मानं विद्धि

महापुरुषो का कथन है कि संसार मे सबसे कठिन कार्य है—'अपने को पहचानना'। इसी ओर इशारा करते हुए महाकवि 'जिगर' ने एक शे'र कहा है –

उनसे मिलने की तो क्या कहिए 'जिगर'
खुद से मिलने को जमाना चाहिए।

वास्तव मे स्वयं को पहचानने मे व्यक्ति को काफी जमाना लग जाता है। खुद को जानना एक गहरे अहसास का विषय है और उस अहसास मे व्यक्ति को स्वय अपने अन्तर मे झांकना होता है, अपना विश्लेषण करना होता है। अपने को पहचानना जीवन की सबसे बडी सफलता है—जीवन का सबसे बडा ज्ञान है।

वस्तुत अपने को पहचानने वाली बात के एक नही अनेक पक्ष हैं। कई पक्ष बडे सूक्ष्म अनुभूति के है। किन्तु सभी पक्ष प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यवहार मे सम्बन्धित हैं; वह व्यवहार चाहे लोक के प्रति हो या अपने प्रति। विषय के किसी सूक्ष्म विवेचन मे जाने से पहले आइए

इसके कुछ स्थूल व्यावहारिक पक्षो पर विचार करें।
नीति का एक श्लोक है —

को काल, कानि मित्राणि; को देश. व्यय आगमौ।
का च हं; का च मे शक्तिः, इति चिन्त्यं मुहुर्मुहु॥

अर्थात् व्यक्ति को वार-वार इस वात पर विचार करना चाहिए कि समय (ज़माना) कैसा चल रहा है? मेरे मित्र कौन-कौन है? जिस देश मे मैं रह रहा हूँ वह देश कैसा है? अर्थात् मैं किस तरह के वातावरण मे जीवनयापन कर रहा हूँ? मेरी आमदनी कितनी है और खर्च कितना है? मै क्या हूँ यानी समाज मे मेरी स्थिति कैसी है? मेरे पास अपनी शक्ति कितनी है?

यह सब कहने से नीतिकार का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त वातो के प्रकाश मे व्यक्ति अपने को पहचानकर चले ताकि उसे अपनी सही स्थिति का ज्ञान रहे। जैसे यदि उसकी आमदनी कम और खर्च ज्यादा है तो निश्चय ही वह कष्ट मे रहेगा। इस कष्ट को महँगाई, जमाने या भाग्य के सिर न थोपकर उसे स्वय अपनी ओर देखना चाहिए, तभी कष्ट से मुक्ति मिल सकती है। जब वह अपनी ओर देखेगा और ईमानदारी से अपने को पहचानेगा तो कष्ट पाने का कारण उसे स्वय मे ही मिल जाएगा। फिर वह उसके निवारण मे भी तत्पर होगा। या तो अपना खर्च कम करेगा अथवा अपनी आमदनी बढाने के जरिए निकालेगा।

इसी प्रकार उसे अपनी शक्ति पहचानकर ही किसी

शत्रु से लडना चाहिए। मित्रों का रुख देखकर ही उनसे सहायता की अपेक्षा करनी चाहिए। देश और काल को देखकर ही उसके अनुरूप आचरण करना चाहिए।

○ **आप ख़ुद अपनी नज़रों में कैसे हैं ?**

आपने किसी वडे दुकानदार से कोई सौदा खरीदा और सौ रुपए का नोट दिया। दुकानदार ने भूल से आपको ज्यादा पैसे वापस कर दिए। आपके मन मे प्रश्न उठता है कि ज्यादा पैसे उसे लौटा दिए जाएँ या नही ? सद्वृत्तियो और दुष्प्रवृत्तियो मे एक द्वन्द्व चला। ईमानदारी कहती है कि आपको ज्यादा आए हुए पैसे लौटा देने चाहिए, लेकिन दुष्प्रवृत्ति कहती है आए हुए पैसो को लौटाना मूर्खता है। दुष्प्रवृत्ति अपने पक्ष मे दलील देती है कि इस वात में तुम्हारी क्या गलती है ? ज्यादा पैसे लौटाने की गलती दुकानदार ने की है; इसके लिए दुकानदार ख़ुद ज़िम्मेदार है तुम नही ! उधर ईमानदारी की तरफ से दलील आती है। वह कहती है—आखिर जो भी हो, तुम ज्यादा पैसे लेने के हकदार तो नही हो। फिर दुष्प्रवृत्ति कहती है—अरे छोडो इन वातो को ! यह दुकानदार रात-दिन ग्राहको को लूटता है; ब्लैक मार्केट करता है, ऐसे आदमी को पैसे वापस करने की क्या ज़रूरत है ?

आप दुष्प्रवृत्ति के वहकावे मे आ जाते हैं और जल्दी से वहाँ से सामान उठाकर चल देते है। इस स्थल पर आप अपने को समझिए! कि दुष्प्रवृत्ति की दलील से

आपने अपने को युक्तिसगत तो ठहरा लिया लेकिन आप खुद ही अपनी नजरो मे गिर गए। अन्तर्मन ने यह फतवा दे दिया कि आपने जान-बूझकर बेईमानी की है। इसीलिए आप दुकान से जल्दी सामान उठाकर चल दिए कि कही आपकी बेईमानी पकडी न जाए। भले ही आप इस बात पर गम्भीरतापूर्वक कुछ सोच-विचार न करे लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से एक कायरता और हीन भावना आपके मन मे ज़रूर घुस जाती है जो कालान्तर मे आपके अन्दर आत्मविश्वास की कमी और साहसहीनता को जन्म देगी जौर आपके नैतिक बल को कमज़ोर बना देगी।

किन्तु यदि आपने इस मौके पर सद्वृत्तियो को उभारा होता और दुकानदार को उसके ज्यादा आए पैसे लौटा दिए होते तो बात बिल्कुल दूसरी ही होती। पैसे लौटाते समय आपका मन ईमानदारी के उत्साह से भरा होता और इस ईमानदारी के फलस्वरूप दुकानदार की ओर से जो आदर आपको मिलता वह आपके लिए गर्व की वस्तु होती। तब आप जल्दी से दुकान से निकलकर भागते नही, बल्कि चेहरे पर एक मुस्कराहट और मन मे एक दृढता लिये हुए आते और आपके इस आचरण से अनायास ही आप अपनी नज़रो मे ऊँचे उठते। आपका नैतिक बल, आत्मविश्वास और साहस बढ जाता।

अब आप स्वय अपने को पहचानिए। मन की दुर्बलता के कारण क्या आप कुप्रवृत्तियो की ओर झुक जाते है अथवा कष्ट पाकर भी नैतिकता का पालन पसन्द

करते है ? आप गलत हैं या सही, यह स्वयं ही समझ लगे। यही आत्मविश्लेषण कहलाता है।

○ **आप अपने को धोखा तो नहीं देरहे हैं ?**

किसी शाइर ने बड़ा अच्छा शे'र कहा है —

हर शख्स बनाता है ईमान का मयार
अपने लिए कुछ और है, गैरो के लिए और।

वास्तव मे ईमानदारी की परिभाषा जब हम अपने लिए एक तरह की और दूसरो के लिए दूसरी तरह की बना लेते है, तो हम अपने को ही धोखा देते हैं।

एक डाक्टर साहब अपने रोगियों को सीधा-सादा इलाज बताते थे ; ज्यादा आडम्बर की बात नही करते थे। उन्होने एक नया कम्पाउण्डर रखा। कम्पाउण्डर बहुत चुस्त चालाक आदमी था। डाक्टर साहब के पास एक नया मरीज आया, बोला—"मैं अपने मर्ज़ से बहुत परेशान हूँ। आप मुझे इन्जैक्शन लगाकर जल्दी ठीक कर दीजिए।" डाक्टर ने रोगी की परीक्षा की और उसे बताया कि उसका रोग कोई ज्यादा गम्भीर नही है और न इन्जैक्शनो की ही जरूरत है, वह साधारण इलाज से ही ठीक हो जाएगा। उन्होने रोगी को दवा दे दी और पथ्य-परहेज बता दिया। अगले दिन वह रोगी उसके पास न आकर बराबर के दूसरे डाक्टर के पास पहुँच गया। उस डाक्टर ने रोगी को फौरन इन्जैक्शन ठूँस दिया। डाक्टर साहब का कम्पाउण्डर यह सब बात देख रहा था। वह डाक्टर साहब से बोला, "आप तो बहुत सीधे आदमी हैं।

ग्राजकल इतना सीधा वनने से काम नही चलता। देखिए कल वाले मरीज़ को आपने इन्जैक्शन नही लगाया, वह मरीज़ आपके हाथ से निकल गया। आज वह बरावर के दवाखाने मे पहुँच गया। वहाँ डाक्टर ने उसे एकदम इन्जैक्शन लगा दिया। मरीज़ की तसल्ली भी हो गई और डाक्टर साहब की कमाई भी हो गई।"

डाक्टर बोले—"लेकिन उस मरीज़ को इन्जैक्शन की ज़रूरत ही नही थी। खामखा ही वह अपने मर्ज़ को बहुत बडा समझे हुए था। वह तो मामूली इलाज से ही ठीक हो सकता है।"

कम्पाउण्डर कहने लगा—"अजी डाक्टर साहब, ज़रा ज़माने की हवा को पहचानिए। आजकल वही डाक्टर बडा और बढिया समझा जाता है जो इन्जैक्शन लगाए और ऊँची कीमत की दवा दे। आजकल रुपए की पूछ है और रुपया इसी तरह कमाया जाता है।"

डाक्टर महोदय को कम्पाउण्डर की सलाह जँच गई और उन्होने मरीजो के साथ अपना रवैय्या वदल दिया। अब वे बे-ज़रूरत भी मरीज़ को इन्जैक्शन लगाते, कई-कई तरह की दवाइयाँ देते। एक दिन एक वच्चे को उन्होने जब बे-ज़रूरत इन्जैक्शन लगाया तो दवाखाने में ही उसकी दशा बिगडने लगी। हालत इतनी खराब हुई कि मरीज़ अब गया कि अब गया। डाक्टर साहब के हाथो के तोते उड गए। बडी कोशिश और उपचार के वाद कही दो घण्टे मे बच्चे की हालत सुधर पाई।

इस घटना ने डाक्टर साहब की आँखें खोल दी। उन्होने आत्मविश्लेषण किया और अपने को दोषी पाया। अगले दिन ही उन्होने उस कम्पाउण्डर को नौकरी से हटा दिया और अपने सीधे-सादे पुराने रवैय्ये पर आ गए।

लोग आत्मविश्लेषण करके अपने को पहचान सके, इसीलिए गाधी जी ने डायरी लिखने पर जोर दिया है। वे नियमित रूप से अपनी डायरी लिखते थे। डायरी लिखने का उद्देश्य यही होता है कि व्यक्ति अपने दिनभर के कामो का लेखा-जोखा करके इस बात का निरीक्षण करे कि उसने कोई काम गलत तो नही किया है ?

किन्तु गलतियाँ अक्सर मनुष्य से होती हैं। यहाँ तक कि यह कहावत बन गई है कि 'गलती करना मनुष्य का स्वभाव है।' बँगला भाषा मे एक कहावत है—'गाछ पाता भूल कोरे न भूल कोरे मानुष' अर्थात् पेड-पत्तो से भूल नही होती, भूल हमेशा इन्सान ही करता है। भूल करना कोई बुरी बात नही है, सवाल भूल पहचानकर उसे स्वीकार कर लेने का है।

वास्तव मे गलती स्वीकार कर लेना बडी बात होती है। गलती पहचानकर उस पर अड़े रहना अपने को धोखा देना होता है। ससार के अनेक महापुरुषो एव विशेष रूप से गाधी जी ने बराबर अपनी भूल स्वीकार की हैं और इस स्वीकृति ने उन्हे महान् बताया है। अपने को पहचानिए—क्या आप अपने को धोखा तो नही देते हैं ?

○ कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य क्या है ?

क्या ठीक है और क्या गलत है अथवा क्या पाप है क्या पुण्य है, यह जानने के लिए धर्म-ग्रन्थो को टटोलने की आवश्यकता नही है। मनुष्य का मन स्वय कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय कर लेता है। सही और गलत कर्मों मे भेद मालूम करने का एक सीधा-सा 'गुर' यह है कि जिस काम के करने मे मन मे दुर्बलता आती है, वही बुरा है, वही पाप है। वस्तुत मन की दुर्बलता ही पाप कहलाती है। यदि कोई व्यक्ति छिपकर प्याज भी खाता है, तो प्याज खाना भी उसके लिए पाप कर्म है। दूसरा व्यक्ति खुले खजाने मास खाता है, उसके मन मे मास-भक्षण के प्रति कोई झिझक नही है तो उसका यह कर्म पाप नही है।

आत्मनिरीक्षण और अपने को पहचानने के बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं। किन्तु मन की दुर्बलता को पहचानना इन सबकी कसौटी होती है।

पीछे जो हमने स्वय को धोखा देने की बात कही है, उसे और कुछ दैनिक व्यवहारो के साथ घटाइए। एक व्यक्ति अपना कर्ज वसूल करने के लिए कर्ज़दार के सिर पर चढ जाता है। उसे खरी-खोटी कहता है, तग करता है और कर्ज़ न चुका सकने के लिए उसे लाछित भी करता है। लेकिन दूसरा व्यक्ति जब उससे अपना कर्ज वसूल करने आता है तो वह घर मे छिप जाता है अथवा बहाने बनाता है ; रुपया होते हुए भी देना नही चाहता तो यह

सरासर अपने को धोखा देना है।

इसी तरह यदि कोई व्यक्ति चोरबाजारी करता है और अपने पक्ष मे यह दलील देता है कि आजकल दुनिया ही चोरबाज़ारी कर रही है, तो उसका कर्म न्याय-संगत नही बनता। वह भी अपने को और दूसरो को धोखा देने के लिए यह दलील देता है। किन्तु उसका अन्तर्मन जानता है कि वह गलत काम कर रहा है।

व्यक्ति जान-बूझकर जो काम अपने अन्तर्मन के विरुद्ध करता है उसके पीछे उसका स्वार्थ छिपा होता है। ऐसे कर्मो से एक बार को स्वार्थसिद्धि भले ही हो जाए लेकिन उसके लिए व्यक्ति को कितना भारी मूल्य चुकाना पड़ता है इसका अहसास उसे कम होता है। वस्तुत. वह आत्मबल, ईमानदारी जेसे ऊँचे मूल्य की वस्तुएँ देकर स्वार्थसिद्धि जैसी घटिया और सस्ती चीजे खरीदता है, नकली काँच की चमक-दमक मे आकर अपनी गाँठ के हीरे खो बैठता है।

व्यक्ति को चाहिए कि इसी स्थल पर आत्मनिरीक्षण करे, अपने को पहचाने। जो सौदा वह कर रहा है उसका सही मूल्याकन करे। सच तो यह है कि इस बाज़ार मे आँखे खोलकर सौदा करने वाले व्यक्ति कम ही होते हैं। अधिकाश लोग टोटे का सौदा ही ले जाते है।

○ कुछ अन्य पक्ष

सत्य को स्वीकार करना, सत्य आचरण करना, सत्य का पक्ष लेना और सत्य को जीवन मे उतारने से मनुष्य

का आत्मबल बढता है, वह ऊँचा उठता है, वह जीवन में सच्ची शान्ति पाता है। सच्चे व्यक्ति को ससार मे किसी से भय नहीं होता।]

आइए कुछ उदाहरणो से सत्य-असत्य का विवेचन करें। लेखक ने बचपन मे एक कहानी पढी थी—

एक मुर्गा कूडे के ढेर पर दाने चुगकर खा रहा था कि इतने मे उधर से एक बिल्ली आ निकली। मुर्गा बिल्ली को देखकर उडा और एक मकान की छत पर जा बैठा। बिल्ली ने शिकार हाथ से निकलता देखा तो उसने मुर्गे को चकमा देना चाहा। वह मुर्गे से बोली—"मुर्गे भाई! तुम मुझसे बिल्कुल मत डरो। आओ, मेरे पास आओ! शायद तुम्हे मालूम नही कि कल जगल के सब जानवरो की एक पचायत हुई थी और उसमे यह फैसला हो गया है कि कोई जानवर किसी दूसरे जानवर को न मारे। इसलिए तुम्हे अब मुझसे डरने की कोई जरूरत नही है। आओ पास वैठकर कुछ वाते करे।"

मुर्गा वोला—"बिल्ली मौसी! मुझे तो ऐसी किसी पचायत की कोई खबर नही मिली। अगर वाकई कोई पचायत हुई थी तो मुझे क्यो नही बुलाया गया?"

इसी वीच दूर से दो शिकारी कुत्ते आते हुए दिखाई दिए तो बिल्ली वहाँ से भागने लगी। मुर्गे ने कहा—"मौसी, अगर पचायत हो गई है तो तुम कुत्तो से डरकर क्यो भाग रही हो?"

बिल्ली वोली—"हो सकता है कि तुम्हारी तरह उन्हे

भी पचायत के निर्णय की ख़बर न हो।"

किसी ने सच ही कहा है कि झूठ के पाँव नही होते। आप किसी स्वार्थ से कोई झूठ बोलते हैं, किन्तु साथ ही मन मे यह सन्देह भी रहता है कि झूठ कही खुल न जाए। और फिर उसे सच साबित करने के लिए बीस झूठ और बोलने पडते है। लेकिन इतना सब करने पर भी झूठ की कलई खुल ही जाती है और सच्चाई सामने आ जाती है। अनेक हत्याएँ, चोरी, गवन, डकैती तथा दूसरे अपराधो पर झूठ का पर्दा डालकर उन्हे छिपाने की कोशिश की जाती है लेकिन देर-सवेर से उनका पर्दाफाश हो जाता है और सत्य प्रकट हो जाता है।

असत्याचरण से व्यक्ति चिन्तित और परेशान रहने लगता है। उसके मन के अन्दर दुर्बलता आ जाती है और मन दुर्बल होने पर जीवन ही दुर्बल हो जाता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। आप सिगरेट पीते हैं। कुछ दिन बाद आप देखते है कि आपका लडका भी सिगरेट पीने लगा है, हालाँकि वह आपसे छुपकर पीता है। आप उसे डाँटते हैं या समझाते हैं कि "सिगरेट पीना बुरा है, इससे फिजूलखर्ची होती है और तन्दुरुस्ती खराब होती है।" लेकिन आप खुद सिगरेट पीना नही छोडते। और उधर अगर लडका सिगरेट नही छोडता तो आप उस पर बिगडते है, प्रताडना करते हैं। ऐसे मौके पर आप अपने लिए यह दलील देते हैं कि "मेरी तो यह बहुत दिनों की आदत हो गई, अब छूटनी मुश्किल है,

और इसके नुक्सान देख देखकर हो तो मैं लडके को सिगरेट से बचने के लिए कहता हूँ कि मैं तो इस चक्कर में फंस ही गया, तू मत फंस। मेरे तजुर्बे से फायदा उठा।" यह ठीक है कि आप नेकनीयती से उससे सिगरेट छुडाना चाहते हैं, उसके हित-चिन्तक हैं। लेकिन दूसरी ओर यह भी एक सत्य है कि आप अपनी कमजोरी पर विजय प्राप्त नही कर सके हैं। यहाँ आप इस तथ्य को नही पहचान पा रहे है कि कोरे उपदेश किसी व्यक्ति पर काम नही कर पाते। वास्तव मे दूसरे पर प्रभाव अपने स्वय के आचरण का पडता है, उपदेशों का नहीं।

सत्य को न समझते हुए इसी तरह की और भी भूलें प्राय. लोग करते हैं, जैसे बच्चो को अपना शासित समझकर उनसे डॉट-फटकार का व्यवहार करना; फिर वे अगर जवाव दे ही दे तो उन पर वेअदब होने का आरोप लगाना। बात वही जो हम पीछे कह आए हैं। ईमानदारी को दो परिभाषाएँ—अर्थात् खुद किसी का अनादर करना और अपने को सही समझना, और फिर उससे यह आशा करना कि वह अनादर के वदले मे उन्हे आदर दे। ऐसे अवसरो पर हम आत्मविश्लेषण नही करते और सचाई को पहचानने से इन्कार करते है।

○ विवेक

विवेकशीलता मनुष्य का सवसे वड़ा गुण है, क्योकि ससार मे विवेक नाम की वस्तु सिवाय मनुष्य के और किसी के पास नही है। सक्षेप मे विवेक की परिभाषा है—

"भलाई-बुराई के अन्तर को पहचानना, या सही और गलत के भेद को समझना।" यह गुण मनुष्य को उसके विकसित मस्तिष्क के कारण मिला है।

आप अपने विवेक को किस हद तक जीवित रखते हैं, यह देखने की बात है। जो व्यक्ति पूर्ण विवेक से काम लेगा, वह जीवन के टेढ़े-मेढे रास्तों को अनायास ही पार करता चलेगा। लेकिन प्राय जीवन मे ऐसी घटनाएँ आती हैं, ऐसे भावनात्मक तूफान उठते हैं कि व्यक्ति का विवेक कुण्ठित हो जाता है, वह विवेकहीन हो उठता है। पागल आदमी का विवेक ही तो नष्ट होता है।

अब यह देखना चाहिए कि विवेक क्योकर नष्ट होता है। हमारे धर्म-ग्रन्थो मे छै बाते इसीलिए त्याज्य मानी हैं क्योकि उनसे विवेक कुण्ठित हो जाता है। वे हैं — काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य।

○ काम

काम का वेग इतना प्रबल होता है कि जब यह मस्तिष्क पर सवार हो जाता है तो व्यक्ति "कामान्ध" कहलाने लगता है। सस्कृत मे कहावत है कि "कामातुराणा न भय न लज्जा" अर्थात् काम से आतुर हुए लोगो मे न भय रहता है न लज्जा रहती है। यह भावनात्मक आवेग विवेक के ऊपर छाकर उसे कुण्ठित कर देता है। फिर उसे न अपनी इज्जत का ध्यान रहता है न सामाजिक मर्यादाओ का खयाल रहता है। वह अपनी भलाई-बुराई सोचने की हालत मे नही रहता।

[यूं काम का वेग एक स्वाभाविक बात है, एक प्राकृतिक तकाजा है। लेकिन यह व्यक्ति की अपनी सूझबूझ होती है, अपनी क्षमता होती है कि वह इस आवेश को अपने विवेक पर हावी न होने दे।]

○ क्रोध

गुस्सा कदाचित् सबसे ज़बरदस्त आवेश है जो मनुष्य के विवेक को बेकार कर देता है और दूसरे आवेश लोभ, मोह आदि जहाँ केवल मस्तिष्क को ही प्रभावित करते हैं, वहाँ गुस्सा केवल मस्तिष्क को ही नही बल्कि सारे शरीर को झँझोड देता है। क्रोध के आवेश मे व्यक्ति काँपता है, उसका मुँह लाल हो जाता है, वाणी पर संयम नही रहता। क्रोध का प्रबल आवेश मनुष्य का सबसे बडा शत्रु माना गया है, क्योकि क्रोध मे वह हत्याएँ तक कर देता है। क्रोध से व्यक्ति मित्रो को शत्रु बना लेता है, क्रोध के कारण ऐसी भी घटनाएँ होती है कि स्वजनो से ही जन्म-भर के लिए वैर बँध जाता है। क्रोध वह विषय है कि बनते कामो को बिगाड़ देता है। इसीलिए हमारे धर्म-ग्रन्थो मे क्रोध को जीतने पर ज़ोर दिया गया है।

क्रोध भी काम की तरह मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति को समय-समय पर क्रोध आता ही है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि क्रोधित होना कोई बुरी बात नही। क्रोध मे बुराई तब पैदा होती है जब आदमी विवेक खो देता है। व्यवहार की दृष्टि से

कई बार क्रोध से अच्छे फल भी निकलते हैं। ऐसा तब होता है जब क्रोध मात्रा के अन्दर किया जाए। मोटे रूप से मात्रा का प्रमाण यह कि हम इतने क्रोधित न हो जाएँ कि दूसरे को गालियाँ दे, अपमान करे अथवा मारपीट के दर्जे तक पहुँच जाएँ। दूसरे शब्दो मे हम इसे नाराज़ी कह सकते है। नाराज़ी के भय से नौकर और मातहत अच्छी तरह काम करते है। नाराज़ी के भय से परिवार के छोटे लोग नियन्त्रण मे रहते हैं। कई बार नाराज़ी या हल्का क्रोध विपक्षियो और शत्रुओ को निस्तेज कर देता है।

निष्कर्ष यह हे कि क्रोध को अपने ऊपर इस हद तक हावी नही होने देना चाहिए कि वह विवेक नष्ट कर दे।

○ **मद**

मद का अर्थ है घमण्ड। घमण्ड भी आदमी के विवेक को धुंधला कर देता है, क्योकि घमण्डी व्यक्ति अपना मूल्य अधिक आँकता है, वह दूसरे लोगो से अपने को ऊंचा और बढिया आदमी समझता है। यदि ऐसे व्यक्ति के पास कुछ अधिक शक्ति भी हो तो मद के कारण वह उसका दूसरो को सताने मे दुरुपयोग करता है। इतना ही नही विवेक धंधला होने के कारण वह और भी अधिक अविवेकपूर्ण काम कर गुज़रता है और ऐसे सभी क्रिया-कलाप उसका अहित करते है। 'घमण्डी का सिर नीचा' यह एक आम कहावत है।

○ **लोभ**

लालच भी आदमी के विवेक को एक बडी हद तक

कुण्ठित कर देता है। समाचार-पत्रो मे प्राय ऐसे समाचार पढने को मिला करते हैं कि लोगो ने थोडे से रुपयो के लालच मे कत्ल कर दिए। लालच का जन्म स्वार्थ से होता है और जब स्वार्थ-सिद्धि ही आदमी का लक्ष्य बन जाती है, व्यक्ति लालच से चिपट जाता है, लोभ की दलदल मे फँस जाता है, तो स्वार्थ और विवेक के बीच एक पर्दा खडा हो जाता है। फलत लालची व्यक्ति विवेकशीलता को जगा नही पाता।

○ मोह

मोह का अर्थ है अज्ञान। अज्ञान भी विवेक का शत्रु है। ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान अन्धकार है। एक बच्चा आग को छूना चाहता है क्योकि उसे इस बात का ज्ञान नही है कि आग उसके हाथ को जला देगी। इसीलिए वह इस अविवेकपूर्ण कार्य मे अग्रसर होता है। [माँ जब बच्चे को आग की तरफ बढता हुआ देखती है तो उसे वहाँ से हटा देती है क्योकि उसे इस बात का ज्ञान है कि आग बच्चे के हाथ को जला देगी। इसलिए मनुष्य को ज्ञान के प्रकाश मे चलना चाहिए।

○ मात्सर्य

मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या, दूसरो के प्रति द्वेष। इस आवेश के प्रभाव मे व्यक्ति अपने प्रतिद्वन्द्वी का हर कीमत पर अहित करना चाहता है। ईर्ष्या की आग मनुष्य को इतना अन्धा बना देती है कि वह अपने हित-अहित का ज्ञान भी खो बैठता है और बहुत बार विवेकहीन होकर अपना ही

अहित कर लेता है। कैकेयी का उदाहरण इतिहास-प्रसिद्ध है। ईर्ष्या पर 'पञ्चतन्त्र' मे एक कथा आती है जो बडी ही तत्वपूर्ण है—

किसी कुएँ मे दो मेढको के परिवार रहते थे। किसी बात पर दोनो मे झगडा हो गया। मामला यहाँ तक बढा कि दोनो परिवार ईर्ष्या की आग मे झुलसने लगे, और हर समय एक-दूसरे के अहित की बात सोचते थे। एक परिवार के मुखिया का नाम गगदत्त था। गगदत्त ने ईर्ष्या-भिभूत होकर अपने प्रतिद्वन्द्वी के परिवार को नष्ट करने की एक योजना बनाई। वह कुएँ से बाहर निकला। थोडी दूर पर 'प्रियदर्शन' नाम का एक साँप अपने बिल मे रहता था। साँप बूढ़ा हो गया था इसलिए मुश्किल से ही अपने लिए भोजन जुटा पाता था। गगदत्त उस साँप के पास पहुँचा और बोला—"मित्र प्रियदर्शन! मैने तेरे भोजन का प्रबन्ध कर दिया है, मगर एक शर्त स्वीकार करनी पडेगी।"

प्रियदर्शन बोला—"वह शर्त भी कहो!"

गगदत्त कहने लगा—"देखो! मेरे कुएँ मे जो दूसरा परिवार रहता है उससे मेरे परिवार की भारी शत्रुता हो गई है और मैंने उन्हे नष्ट कर देने का निश्चय कर लिया है। सो मैं तुझे उस कुएँ मे ले जाऊँगा। कुएँ मे कई बिल बने हुए हैं। तू आराम से किसी बिल मे रहना। मैं तुझे अपने प्रतिद्वन्द्वियो की पहचान करा दूंगा, और तू उन्हे एक-एक करके खा जाना, किन्तु मेरे परिवार से कुछ न

कहना। जब प्रतिद्वन्द्वी परिवार के सब मेंढक समाप्त हो जाएँ तो फिर तुम कुएँ से वापस आ जाना।"

प्रियदर्शन साँप मन-ही-मन गगदत्त की मूर्खता पर हँसा किन्तु प्रत्यक्ष मे कहने लगा—"ठीक है भाई गगदत्त, मुझे तेरी शर्त मजूर है। तू फौरन मुझे कुएँ मे ले चल, मैं बहुत भूखा हूँ।"

गगदत्त प्रियदर्शन को कुएँ मे ले गया और प्रतिद्वन्द्वी परिवार के मेढको को पहचनवा दिया। साँप ने धीरे-धीरे उन्हे भक्षण करना शुरू कर दिया। जैसे-जैसे साँप उस परिवार के बच्चो को खाता, गगदत्त खूब खुश होता था। धीरे-धीरे साँप ने उस परिवार के सभी सदस्यो को खा डाला।

तब गगदत्त उससे बोला—"मित्र प्रियदर्शन! अब तुम शर्त के अनुसार अपने घर वापस चले जाओ।"

साँप बोला—"घर वापस जाकर मुझे भूखा नही मरना है। मैं ऐसी मूर्खता नही करूंगा।"

और अगले दिन से साँप ने गगदत्त के बच्चो को खाना शुरू कर दिया। अब गगदत्त की आँखें खुली। उसे यह अनुभव होने लगा कि ईर्ष्याभिभूत होकर उसने स्वय अपनी ही मौत बुला ली है। किन्तु अब क्या हो सकता था! साँप को वहाँ से हटाना उसके वश की बात नही थी। अन्त मे एक-एक करके साँप ने गगदत्त के भी सारे बच्चे खा डाले। फिर एक दिन साँप जब गगदत्त को खाने के लिए लपका तो गगदत्त कहने लगा—"भाई प्रियदर्शन, तू

मुझे मत खा क्योकि मुझे खा लेने पर तेरा एक दिन का ही काम चलेगा। लेकिन अगर तू मुझे छोड देगा तो मैं वाहर से और मेढको को बहला-फुसलाकर तेरे भोजन के लिए ले आऊँगा। चूँकि तू मेरा मित्र है इसलिए तेरे भोजन का प्रवन्ध करना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।"

प्रियदर्शन गंगदत्त की वात मान गया और उसे दूसरे मेढको को लाने के लिए भेज दिया। लेकिन गगदत्त को दूसरे मेढक थोडे ही लाने थे। वह तो इस बहाने अपनी जान वचाकर भागा था। गगदत्त फिर कभी उस कुएँ मे नही गया और हमेशा अपनी गलती पर पछताता रहा।

○ दूरर्दशिता

दूरदर्शिता विवेक से ही पैदा होती है। यह विवेक की पुत्री है। सुखी और सफल जीवन के लिए मनुष्य मे दूरदर्शिता की भारी आवश्यकता होती है। किसी काम को करने से पहले उसके नतीजे को सोच लेना ही दूरदर्शिता कहलाती है। आप जीवन मे कितने दूरदर्शी हैं यह विवेचन भी आपको करते रहना चाहिए। वस्तुत दूरदर्शिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे दरकार होती है। इसकी भी एक कथा 'पञ्चतन्त्र' मे आती है जो वडी दिलचस्प है। सुनिए!

किसी राजा को पशु-पक्षी पालने का वडा शौक था। उसकी पशुशाला मे घोडे, वन्दर, भेड, वकरी, हिरन आदि अनेक तरह के पशु थे। सभी को अच्छा भोजन मिलता था और मौज से रहते थे।

पशुशाला मे जो बन्दर रहते थे उनमे एक बूढा बन्दर भी था जो बन्दरो का सरदार था। यह सरदार कई दिन से यह बात देख रहा था कि एक भेड का मेमना रोज़ राजा के रसोईघर मे घुस जाता है, और वहाँ आटा, दाल, चावल, सब्ज़ी, फल जो कुछ भी हाथ लगे उसे सफाचट कर जाता है। रसोइया हालाँकि काफी सतर्क रहता था लेकिन मेमना उसकी आँख बचाकर रसोईघर मे घुस ही जाता था। मेमने की इस हरकत से रसोइया उससे चिढने लगा था। फलत वह जब भी मेमने को रसोईघर मे देख लेता तो ईंट, पत्थर, चिमटा, डण्डा आदि जो हाथ लगता उसी से मारकर निकाल देता था।

यह देखकर बूढे बन्दर सरदार का माथा ठनक गया। उसने सारे बन्दरो की एक सभा बुलाई और कहा—"भाइयो! राजा की इस पशुशाला मे तुम बन्दरो की ज़िन्दगी हर समय खतरे मे है। इसलिए मेरी सलाह यह है कि सब बन्दरो को राजा की पशुशाला छोडकर जगल को चल देना चाहिए। मैं ऐसा क्यो कह रहा हूँ उसका कारण सुनो। कई दिनो से मैं यह देख रहा हूँ कि एक भेड का मेमना जिसके शरीर पर काफी बडी-बड़ी ऊन है, रोज़ ही रसोईघर मे घुसकर वहाँ की चीज़े खाता है, और रसोइया जब देखता है तो जो-कुछ चीज उसके हाथ लगती है उसीसे मेमने को मारता है। लेकिन मार खाकर भी मेमना रसोईघर मे जाने से बाज़ नही आता। उसे वहाँ की बढिया-बढिया चीज़े खाने का चस्का लग गया

है। अब एक दिन ऐसा होगा कि रसोइए के हाथ और कुछ नही लगेगा तो वह चिढकर चूल्हे की जलती हुई लकड़ी से मेमने को मारेगा। फलतः मेमने की ऊन में आग लग जाएगी। मेमना घबराकर सीधा रसोईघर से निकलकर सामनें की ओर भागेगा। सामने ही राजा की घुडसाल है और घुडसाल मे घोडो के लिए सूखी घास भरी है। मेमना वहाँ घुसेगा तो सूखी घास मे आग लग जाएगी। उस आग से घोडे भी जल जाएँगे। तब राजा घोडो के हकीम को बुलाएगा। घोड़ा चूँकि कीमती जानवर है और लडाई मे काम आता है इसलिए राजा हर कीमत पर घोडो की जान बचाने की कोशिश करेगा। तुम्हे शायद यह नही मालूम कि जले हुए घोडो पर बन्दर की चर्बी लगाई जाती है। घोडो का हकीम राजा से बन्दरो की चर्बी मँगवाने के लिए कहेगा और राजा तुम सब बन्दरो को मरवाकर तुम्हारी चर्बी घोडो के लिए निकलवाएगा। बन्दर कोई कीमती जानवर नही है। तुम्हारे मारे जाने पर राजा जगल से और बन्दर पकडवा-कर मँगवा लेगा। इसलिए भलाई इसी मे है कि हम लोग इस स्थान को छोड दे नही तो जान से हाथ धोने पडेगे।

बूढे सरदार की बात सुनकर कुछ बन्दर तो उससे सहमत होकर चलने को तैय्यार हो गए, लेकिन दूसरे कुछ बन्दर कहने लगे कि "अरे! इस बुड्ढे का तो दिमाग खराब हो गया है। यूं ही शेखचिल्लियो जैसी बातें करता है। ऐसा होगा, फिर ऐसा हो जाएगा। भला राजमहल

का हलवा-पूरी का भोजन और आराम की जिन्दगी छोडकर जगलों मे पत्ते खाना और भटकना कौन-सी बुद्धिमानी है ? हम यहाँ से नही जाएँगे।" जो बन्दर सरदार से सहमत थे उन्हे लेकर सरदार फौरन ही राजा की पशुशाला छोडकर चला गया।

उन्हे गये हुए एक सप्ताह भी नही बीता था कि वह घटना वैसे ही हुई जैसाकि सरदार ने अनुमान लगाया था। रसोइए ने मेमने को जलती लकडी से मारा। उसकी ऊन मे आग लग गई। वह अस्तबल मे जा घुसा। वहाँ की घास जली और घोडे जल गए। तब हकीम बुलाया गया। उसने बन्दरो की चर्बी लाने को कहा। राजा ने वन्दरो को मारकर चर्बी निकालने का हुक्म दे दिया।

और जब उन वन्दरो को मारा जा रहा था, तो वे सरदार की दूरदर्शिता को सराह रहे थे और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे।

दूरदर्शिता किसी व्यक्ति मे ईश्वरीय देन होती हो, ऐसी वात नही है। यह तो अपने अन्दर पैदा करने वाला गुण है। इस सम्वन्ध मे आप स्वय अपनी कार्यविधि का निरीक्षण कीजिए कि कही आप हरेक काम के करने मे जल्दवाज़ी तो नही करते हैं ? कोई कदम उठाने से पूर्व उसके अंजाम पर गौर करते हैं या नही ?

कई वार भावनाएँ दूरअन्देशी की प्रवृत्ति को ढक लेती हैं, जैसे आप अपने लडके की शादी करने जा रहे है। आपने एक निश्चित रकम उसकी शादी के लिए जुटा-

कर रखी है , आपको उतने ही मे काम करना है। अधिक खर्च करने की आपके अन्दर गुंजायश नही है। लेकिन जब विवाह का वातावरण घर मे फैलता है तो एक भावनात्मक आन्दोलन से आपका मन हिलोरे लेने लगता है। मित्र, रिश्तेदार, ऐसे मौको पर और भी अधिक उत्साह दिखाते है। कोई आतिशबाज़ी छोडने पर ज़ोर देता है। कोई दो बैंड-बाजे ले चलने का प्रस्ताव करता है। कोई मुहल्ले के लोगो की दावत करने का सुझाव देता है। ऐसे मौको पर लोग इस तरह की दलीले देते है, "भई ब्याह तो एक बार ही करना है, ऐसे मौके पर नाक पर मक्खी मत बैठने दो।"—"साहब कजूसी और कही कर लेना, ये मौके कजूसी दिखाने के नही होते।"—"अजी कोई शादी-ब्याह के मौको पर बजट बनाकर चला जाता है? ऐसे मौके पर तो खर्च अधिक होता ही है। जिनका खाया है उन्हे खिलाना भी पडता है, जिसका ले चुके हो उसे देना भी पडेगा।" ऐसे माहौल मे आप भी भावनात्मक उत्साह मे आ जाते है और खर्च निश्चित रकम से कही अधिक हो जाता है।

लेकिन जब ब्याह के भावनात्मक माहौल का नशा उतरता है, नाते-रिश्तेदार चले जाते है, घर का भीड-भडक्का कम होकर सामान्य वातावरण आता है तो आप देखते है कि निश्चित रकम से दो हज़ार रुपए अधिक खर्च हो गये है। वे दो हज़ार आपको चुकाने है।

ऐसे मौको पर आदमी को अधिकाश रूप मे कर्ज

लेकर देनदारी चुकानी पडती है। आमदनी इतनी है नहीं कि दो हज़ार धीरे-धीरे बचा लिया जाए। ऐसी स्थिति मे दो हज़ार का कर्ज़ भी उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है। जिस स्थिति का ज़िक्र हम यहाँ कर रहे हैं वह प्राय· आम लोगो के सामने आती है।

ऐसे मौको पर ज़रूरत इस बात की होती है कि भावनाओ के प्रभाव से परे रहकर तर्क को प्रधानता दे ; स्थिति को सही रूप मे समझें। ऐसे अवसरो पर अधिक खर्च करने से बहुत थोडे समय के लिए कुछ लोगो की वाहवाही मिलती है। इससे अधिक और कुछ नही। सच पूछिए तो इस वाहवाही का कोई स्थायी मूल्य नही होता। किन्तु अधिक खर्च का जो भार आपके ऊपर आएगा वह आपके लिए एक स्थायी सरदर्द बन जाएगा।

दूसरी ओर यदि आप इस जश्न मे अतिरिक्त खर्च नही करते हैं तो भी स्थिति मे कोई खास फर्क नही पडता। कदाचित् अधिक खर्च का सुझाव देने वाले मित्र-परिजन दो-चार दिन इधर-उधर कानाफूसी करते हुए कहेंगे—"अगर बारात मे आतिशबाज़ी होती तो रौनक ही कुछ और होती। बैण्ड के साथ नफीरी होती तो समाँ ही कुछ और बँध जाता। ऐसे मौको पर पैसे का मुंह नही देखना चाहिए।" इसी तरह दावत को टाल जाने का उलाहना भी मिलेगा। और इन उलाहनो का भी कोई स्थायी मूल्य नही होता। चार दिन बाद सब लोग अपने-अपने काम मे लगकर इन क्षणिक बातो को भूल जाएँगे।

किन्तु आप अधिक खर्च और कर्ज की परेशानी से निश्चित रूप से बच जाएँगे।

ऐसे भावनात्मक आवेग शादी, ब्याह, या पुत्रजन्म तक ही सीमित नही होते, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे ऐसे अवसर आते हैं। इसलिए [सभी जगह भावनाओ पर नियन्त्रण पाकर तर्कसगत काम करने चाहिए। आप स्वय निरीक्षण कीजिये कि इन मामलो मे आप कितने तर्कसगत है।]

○ भावनाएँ और व्यवहार

भावनाओ से व्यक्ति का व्यवहार बहुत प्रभावित होता है। किन्तु व्यवहार करते समय भी हमे तर्क और दूरदर्शिता एव उदारता से काम लेना चाहिए। भावनाओं के आवेश मे हम कोई गलत कदम न उठा जाएँ, इस दिशा मे सावधानी बरतनी चाहिए।

उदाहरण लीजिए! आपके पास साइकिल है। पडौसी जब-तब आपसे साइकिल माँगकर ले जाता है। आप कभी उसे इन्कार नही करते। आपका दृष्टिकोण साइकिल देने के समय यह रहता है कि "साइकिल जैसी छोटी चीज़ के लिए किसी को क्या इन्कार करना! यदि अपने से किसी का काम निकलता है तो यह बड़ी अच्छी बात है। आदमी को आदमी के काम आना ही चाहिए।" आपका यह उद्देश्य रहता है कि आप समाज के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बन सके।

अब किसी दिन आप अपने पड़ौसी से धूप का चश्मा

मँगवाते हैं। लेकिन उसके पास से आपको चश्मा नही मिलता। वह कोई झूठा-सच्चा बहाना बनाकर इन्कार कर देता है। स्वाभाविक रूप से आपके मन मे पडोसी के प्रति एक प्रतिक्रिया पैदा होती है कि 'देखो कितना खुद-गरज आदमी है! हमारी साइकिल के लिए दिन-रात दरवाजे पर खडा रहता है। और आज ज़रा हमने चश्मा माँगा तो भाई ने साफ इन्कार कर दिया।' आपके मन मे तेज़ी से यह विचार उठता है कि 'आगे से हम उसे साइकिल के लिए साफ इन्कार कर देगे।'

मोटे रूप से देखने मे आपका निश्चय ठीक हो सकता है। आदान-प्रदान की बात तभी ठीक तरह से निभती है जबकि दोनो ही पक्ष उसमे सहयोग दें। जब वह आपको चश्मा नही दे सकता तो आप ही क्यों अपनी साइकिल दे?

लेकिन इस मसले पर थोडा गहराई से सोचा जाए तो निष्कर्ष कदाचित् दूसरा ही निकलेगा।

पहली बात यह है कि हर व्यक्ति का दिलो-दिमाग, स्वभाव, व्यवहार और जीवन को देखने का चश्मा अलग होता है। यह ज़रूरी नही है कि हरेक व्यक्ति आपकी तरह ही सोचे और चले। ससार के लोगो मे इस तरह का अन्तर होना बिलकुल स्वाभाविक है। इस तथ्य से यह वास्तविकता सामने आती है कि आपका पडोसी भी आपकी तरह सोचे, यह ज़रूरी नही है।

दूसरी बात यह कि आपने जो दूसरो के काम आने की अपने लिए एक व्यवहार-नीति बनाई है, वह अपने

पडौसी या किसी दूसरे से पूछकर तो बनाई नही। वह आपने अपने अन्तर्मन की प्रेरणा से बनाई, क्योंकि आप-को दूसरे के काम आने में, उन्हे अपनी चीजें देने मे एक नैतिक सुख मिलता है। आपका मन सद्भावनाओ से आप्यायित होता है। ऐसी हालत मे यदि आप अपने मन के आनन्द को पडौसी के सकुचित व्यवहार के हाथ बेच देते हैं तो सोचिए कितने घाटे मे जाते हैं!

जिस तरह की परिस्थिति का मैंने यहाँ उल्लेख किया है ठीक वैसी ही परिस्थिति एक-दो बार मेरे परम मित्र प्रसिद्ध पत्रकार श्री श्यामलाल पण्डित के समक्ष आई। श्री पण्डित स्वभाव से ही समाजसेवी हैं। दूसरो के काम के लिए इधर-उधर दौडते फिरते हैं। एक दिन किसी बहुत आवश्यक कार्य के लिए उन्होने अपने द्वारा एक उपकृत व्यक्ति से एक दिन के लिए उसकी कार माँगी और पैट्रोल का खर्च स्वयं बर्दाश्त करना स्वीकार किया। लेकिन उस व्यक्ति ने कार खराब होने का बहाना करके साफ इन्कार कर दिया। इस बात पर पण्डित जी की पत्नी और पुत्र ने पण्डित जी की आलोचना प्रारम्भ कर दी।

बोले—"देख लिया ज़माने का क्या हाल है! तुम्ही हो जो लोगो के लिए इधर-उधर दौडे फिरते हो। तुम अगर इस आदमी की मदद न करते तो आजकल यह जेल मे होता। और अब तुम्हे कार को इन्कार कर दिया। सब अपना वक्त भूल जाते हैं। दुनिया अपने मतलब की

है। आजकल ज्यादा परोपकारी बनने से काम नही चलता।"

पण्डित जी कहने लगे—"मैं किसी व्यक्ति के साथ भलाई इसलिए नही करता कि किसी समय मैं उससे भलाई का बदला चाहूँ। दूसरो से सहयोग और उनकी सेवा मेरा अपना स्वभाव बन गया है। अगर कोई आदमी अपने किसी छोटे स्वार्थवश मेरे काम नही आना चाहता तो इससे क्षुब्ध होकर मैं अपने सद्व्यवहार मे क्यो अन्तर लाऊँ।" वास्तव मे ऐसे सकुचित मनोवृत्ति के लोग क्रोध या घृणा के नही वरन् दया के पात्र हैं। मुझे तो उनकी मूर्खता पर केवल हँसी आकर रह जाती है, क्योकि वह यह नही समझता कि वह क्या कर रहा है। महात्मा ईसा ने तो अपने 'सूली' देने वालो तक के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी कि "हे परम पिता! तू इन्हे माफ कर देना, क्योकि ये लोग नही जानते कि ये क्या कर रहे हैं।" और ये तो बहुत छोटी-छोटी बातें है। इनसे क्षुब्ध होकर हमे अपना अच्छा स्वभाव नही छोडना चाहिए।

इस सन्दर्भ मे एक किम्वदन्ती है कि एक साधु किसी नदी के किनारे बैठा ईश्वर की उपासना कर रहा था। तभी नदी के पानी मे एक बिच्छू बहता हुआ आया। साधु ने बिच्छू की प्राण-रक्षा के लिए पानी मे हाथ डालकर उसे निकालना चाहा तो बिच्छू ने फौरन उसके हाथ मे डक मार दिया। साधु के हाथ मे पीडा हुई और बिच्छू फिर पानी मे जा गिरा। साधु ने फिर उसे निकालना

पडौसी या किसी दूसरे से पूछकर तो बनाई नही। वह आपने अपने अन्तर्मन की प्रेरणा से बनाई, क्योकि आपको दूसरे के काम आने मे, उन्हे अपनी चीजें देने में एक नैतिक सुख मिलता है। आपका मन सद्भावनाओ से आप्यायित होता है। ऐसी हालत मे यदि आप अपने मन के आनन्द को पड़ौसी के सकुचित व्यवहार के हाथ बेच देते है तो सोचिए कितने घाटे मे जाते हैं!

जिस तरह की परिस्थिति का मैंने यहाँ उल्लेख किया है ठीक वैसी ही परिस्थिति एक-दो बार मेरे परम मित्र प्रसिद्ध पत्रकार श्री श्यामलाल पण्डित के समक्ष आई। श्री पण्डित स्वभाव से ही समाजसेवी है। दूसरो के काम के लिए इधर-उधर दौडते फिरते हैं। एक दिन किसी बहुत आवश्यक कार्य के लिए उन्होने अपने द्वारा एक उपकृत व्यक्ति से एक दिन के लिए उसकी कार माँगी और पैट्रोल का खर्च स्वयं बर्दाश्त करना स्वीकार किया। लेकिन उस व्यक्ति ने कार खराब होने का बहाना करके साफ इन्कार कर दिया। इस बात पर पण्डित जी की पत्नी और पुत्र ने पण्डित जी की आलोचना प्रारम्भ कर दी।

बोले—"देख लिया ज़माने का क्या हाल है! तुम्ही हो जो लोगो के लिए इधर-उधर दोडे फिरते हो। तुम अगर इस आदमी की मदद न करते तो आजकल यह जेल मे होता। और अब तुम्हे कार को इन्कार कर दिया। सब अपना वक्त भूल जाते हैं। दुनिया अपने मतलब की

है। आजकल ज्यादा परोपकारी बनने से काम नही चलता।"

पण्डित जी कहने लगे—"मैं किसी व्यक्ति के साथ भलाई इसलिए नही करता कि किसी समय मैं उससे भलाई का बदला चाहूँ। दूसरो से सहयोग और उनको सेवा मेरा अपना स्वभाव बन गया है। अगर कोई आदमी अपने किसी छोटे स्वार्थवश मेरे काम नही आना चाहता तो इससे क्षुब्ध होकर मैं अपने सद्व्यवहार मे क्यो अन्तर लाऊँ।" वास्तव में ऐसे सकुचित मनोवृत्ति के लोग क्रोध या घृणा के नही वरन् दया के पात्र हैं। मुझे तो उनको मूर्खता पर केवल हँसी आकर रह जाती है, क्योकि वह यह नही समझता कि वह क्या कर रहा है। महात्मा ईसा ने तो अपने 'सूली' देने वालो तक के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी कि "हे परम पिता! तू इन्हे माफ कर देना, क्योकि ये लोग नही जानते कि ये क्या कर रहे हैं।" और ये तो बहुत छोटी-छोटी बातें है। इनसे क्षुब्ध होकर हमे अपना अच्छा स्वभाव नही छोडना चाहिए।

इस सन्दर्भ मे एक किम्वदन्ती है कि एक साधु किसी नदी के किनारे बैठा ईश्वर की उपासना कर रहा था। तभी नदी के पानी मे एक बिच्छू बहता हुआ आया। साधु ने बिच्छू की प्राण-रक्षा के लिए पानी मे हाथ डालकर उसे निकालना चाहा तो बिच्छू ने फौरन उसके हाथ मे डक मार दिया। साधु के हाथ मे पीड़ा हुई और बिच्छू फिर पानी मे जा गिरा। साधु ने फिर उसे निकालना

अर्थात्—खल (दुष्ट) व्यक्ति विद्या पढकर झगडे के रूप मे उसका दुरुपयोग करता है। उसका धन घमण्ड करने के लिए होता है और अपनी शक्ति से वह दूसरो को दु ख देता है। इसके विपरीत एक सज्जन व्यक्ति की विद्या ज्ञान के लिए होती है, धन दूसरों की सहायता के लिए होता है और शक्ति दूसरो की रक्षा के लिए होती है। ◉◉

उपसंहार

○ ससार में सबसे अधिक स्थायी वस्तु क्या है ?
'आशा' क्योकि मनुष्य का सब-कुछ खो जाने पर भी आशा उसके साथ रहती है ।

○ ससार मे सबसे अधिक शक्तिशाली वस्तु कौन-सी है ?
'जरूरत' जो जीवन के वडे-से-वडे खतरे का सामना करने के लिए मनुष्य को वाध्य करती है ।

○ ससार मे सबसे सरल काम क्या है ?
दूसरो को उपदेश देना ।

○ ससार में सबसे कठिन कार्य कौन-सा है ?
अपने को पहचानना ।

○ यदि आप सत्यपरायणता का आचरण नही कर पाते हैं, तो भी सत्य पर से अपना विश्वास मत हटने दीजिए। फिर आप स्वय ही सत्याचरण करने लगेंगे ।

○ सत्य से मनुष्य को अटूट वल, साहस और निर्भयता मिलती है ।

○ घृणा को दूर करने के लिए घृणा मत कीजिए। घृणा प्रेम से दूर होती है।

○ मनुष्य को ईश्वर की सबसे बडी देन 'विवेक' है। कभी अपने विवेक को कुण्ठित मत होने दीजिए।

○ खुशमिजाजी जीवन की सबसे बड़ी दौलत है। इससे जीवन का बीहड मार्ग हरा-भरा बन जाता है।

○ अनन्त शास्त्रं बहुवेदितव्यं
स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।
यत्सारभूतं तदुपासितव्यम् ॥

ससार मे अनन्त शास्त्र है, बहुत-कुछ जानने को है, लेकिन समय बहुत थोडा है और विघ्न-बाधाएँ बहुत हैं। इसलिए सारभूत बात को ग्रहण करना चाहिए।

○ समय का सबसे बडा सदुपयोग 'ज्ञान अर्जन' है। ज्ञान केवल पुस्तको मे ही नही है; वह तो ससार में यत्र-तत्र बिखरा पडा है बशर्ते कि हमारी आँखे उसे पढना जानती हो।

○ सफलता जीवन की कसौटी नही है। महत्व विचारों और उद्देश्य का होता है।

○ अपने को हीन समझना सबसे बडा पाप है। हीनता से पीडित व्यक्ति जीवन की बाज़ी ही हार बैठता है।

○ मन के सन्ताप और क्लेश ज्ञान के प्रकाश से दूर होते है।

- धन और ज्ञान पर मनुष्य को एकाधिपत्य नही रखना चाहिए। ये तो दूसरो को बाँटने की वस्तुएँ हैं।
- दूसरो का छिद्रान्वेषण करने से पहले अपने पर नजर डाल लो।
- उदार होना इस बात का प्रमाण है कि आपने जीवन का सही मूल्याकन किया है।
- मुसीबत मे व्यक्ति खुद अपनी सबसे बडी सहायता कर सकता है।



हमारे लोकप्रिय प्रकाशन

जीवनोपयोगी

आप क्या नहीं कर सकते ?	स्वेट मार्डन	१ ००
चिन्तामुक्त कैसे हो ?	,,	१.००
हँसते-हँसते कैसे जिये ?	,,	१ ००
जो चाहे सो कैसे पाये ?	,,	१ ००
अपना खर्च कैसे घटाये ?	,,	१ ००
अवसर को पहचानो	,,	१ ००
अपने आपको पहचानिये	,,	१.००
सिगरेट बीडी कैसे छोड़े	नरेन्द्रनाथ	१ ००

काव्य एवं हास्य-व्यंग

भाभी जी नमस्ते	गोपालप्रसाद व्यास	१ ००
पत्नी को परमेश्वर मानो	,,	१ ००
सलवार चली-सलवार चली	,,	१.००
मेरी पत्नी भली तो है लेकिन ...	,,	१ ००
हास्यकवि-सम्मेलन	,,	१ ००
हास्यरस के छल्ले	,,	२ ००
दुलत्ती	काका हाथरसी	१ ००
महामूर्ख सम्मेलन	,,	१.००
ललकार	बालकवि बैरागी	१ ००
ढोल की पोल	चिरंजीत	१.००
हँसना मना है	योगेन्द्रकुमार लल्ला	१ ००
शे'र-ओ-सुखन	चन्द्र मायुर	२.००
दीवान-ए-जफर	रामानुजलाल श्रीवास्तव	२.००

सुबोध पॉकेट बुक्स, दरियागंज, दिल्ली